* ॐ कुम्भाय नमः * ॐ कुम्भाय नमः * ॐ कुम्भाय नमः *

'कौल-कल्पतरु' चण्डी ✸ 'हीरक'-जयन्ती

'कुम्भ'-विशेषाङ्क

परिचय, महिमा, रहस्य एवं विधि - विधान

'कुम्भ'-पर्व-पत्र

पौष पूर्णिमा, मङ्गलवार (९ जनवरी, २००१) : 'कुम्भ'-पर्व - स्नान - व्रत - यम - नियम प्रारम्भ। **'चन्द्र'-ग्रहण** (रात्रि १२ बजकर, १२ मिनट से ३ बजकर, २६ मिनट तक)। इष्ट-मन्त्र-जप। **श्रीललिता-पूजा।**

माघ कृष्णा प्रतिपदा, बुधवार (१० जनवरी, २००१) : 'प्रयाग'-स्मरण-मज्जन।

माघ कृष्णा द्वितीया, बृहस्पतिवार (११ जनवरी, २००१) : गुरु-पुष्य-योग (दिन ११४२ तक)। **श्रीमहा-लक्ष्मी-साधना।**

माघ कृष्णा तृतीया, शुक्रवार (१२ जनवरी, २००१) : श्रीगणेश-चतुर्थी-व्रत। रात्रि ८।२२ पर चन्द्रोदय होने पर **'चन्द्र' को अर्घ्य-दान।**

माघ कृष्णा पञ्चमी, रविवार (१४ जनवरी, २००१) : मकर-संक्रान्ति, पुण्य-काल प्रातः १०.२४ से रात्रि २ बजकर २४ मिनट तक। **उत्तरायण, सूर्य को अर्घ्य-दान।** तिल-युक्त जल से स्नान। तिल का त्रिकोण बनाकर दान।

माघ कृष्णा अष्टमी, बुधवार (१७ जनवरी, २००१) : बुधाष्टमी-पर्व।

माघ कृष्णा एकादशी, शनिवार (२० जनवरी, २००१) : षट्-तिला-एकादशी। तिल-दान, तिल का भोजन, तिल-युक्त जल से ऋषियों-देवताओं का तर्पण।

माघ कृष्णा द्वादशी, रविवार (२१ जनवरी, २००१) : प्रदोष। तिल-द्वादशी।

माघ मौनी अमावास्या, मङ्गलवार-बुधवार (२३-२४ जनवरी, २००१) : मौन-व्रत-पूर्वक स्नान-दान-श्राद्ध। **पुण्य-काल २३ जनवरी दिन ३.१६ से २४ जनवरी, सायं ५.२० तक।** २३ जनवरी २००१ को **भौमावास्या।** रात्रि में श्री-समृद्धि हेतु **श्रीललिता-नाम-साधना।**

माघ शुक्ला चतुर्थी, रविवार (२८ जनवरी, २००१) : वैनायकी श्रीगणेश-चतुर्थी-व्रत। कुन्द-चतुर्थी कुन्द पुष्प से भगवान् शिव की पूजा।

माघ शुक्ला पञ्चमी, सोमवार (२९ जनवरी, २००१) : श्रीवागेश्वरी जयन्ती। **सरस्वती-लक्ष्मी-बृहस्पति-सहित रति एवं कामदेव की पूजा।** गायन-वादन-नृत्य।

माघ शुक्ला षष्ठी, मङ्गलवार (३० जनवरी, २००१) : षष्ठी-व्रत। तिल-दान।

माघ शुक्ला सप्तमी, बुधवार (३१ जनवरी, २००१) : रथ-सप्तमी। अचला-सप्तमी। सूर्य को अर्घ्य-दान।

माघ शुक्ला अष्टमी, बृहस्पतिवार (१ फरवरी, २००१) : भीष्माष्टमी। भीष्म को जल-दान, तर्पण। पुण्य-काल रात्रि २।२।

माघ शुक्ला नवमी, शुक्रवार (२ फरवरी, २००१) : महा-आनन्दा-नवमी। पुण्य-काल रात्रि १।२ तक।

माघ शुक्ला एकादशी, रविवार (४ फरवरी, २००१) : भीष्म एकादशी। जया एकादशी। पुण्य-काल, रात्रि ६।५३ तक। **वेणी माधव भगवान् की पूजा।**

माघ शुक्ला द्वादशी, सोमवार (५ फरवरी, २००१) : भीष्म द्वादशी। सोम प्रदोष। पुण्य-काल, रात्रि ७।५२ तक।

माघ पूर्णिमा, बुधवार-गुरुवार (७-८ फरवरी, २००१) : माघ-स्नान-समाप्ति। **पुण्य काल ७ फरवरी, दिन ३ बजकर ६ मिनट से ८ फरवरी, मध्याह्न १२ बजकर ४६ मिनट तक।** तिल-दान।

फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी, बुधवार (२१ फरवरी, २००१) : महा-शिव-रात्रि (सायं-काल)।

* * *

नए प्रकाशन

■ **सार्थ सौन्दर्य-लहरी**

'चण्डी'-मासिक पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित 'सार्थ सौन्दर्य-लहरी' पुस्तक-रूप में प्रकाशित हो चुकी है। मूल्य ६५-०० है। 'चण्डी' के पाठक बन्धु इसे रियायती मूल्य ५०-०० पर प्राप्त कर सकते हैं।

■ **सप्तशती-तत्त्व**

सुन्दर पुस्तक-रूप में अब 'सप्तशती-तत्त्व' भी उपलब्ध है। मूल्य ३०-०० है। 'चण्डी' के पाठक-बन्धु रियायती मूल्य २५-०० पर प्राप्त कर सकते हैं।

■ **गायत्री-कल्पतरु**

नवीन सुन्दर संस्करण। मूल्य ४५-००। 'चण्डी' के पाठकों के लिए रियायती मूल्य ३५-००।

■ **सम्पादक**
रमादत्त शुक्ल
ऋतशील शर्मा
पता :
श्रीचण्डी-धाम
अलोपीदेवी मार्ग, प्रयाग-राज
दूरभाष : (०५३२) ५०२७८३
वार्षिक अनुदान : रु० १२०
प्रकाशक :
पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान,
प्रयाग-राज (उ०प्र०) - २११००६
अक्षर-संयोजन :
ए.एस. लेजर प्वाइण्ट
कटरा, प्रयाग, फोन : ६०५७६५

'कौल-कल्पतरु' चण्डी
पौष-फाल्गुन, 'विजय' सं० २०५७ वि०
जनवरी-फरवरी, २००१
'कुम्भ'-पर्व—विशेषाङ्क

इस अङ्क में

■ **साधक का संवाद** ३०६
■ **'कुम्भ'-पर्व—विशेषाङ्क** १-७२

सूचना : 'चण्डी' की 'हीरक'-जयन्ती

'चण्डी' के पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'कुम्भ'-पर्व, 'विजय' २०५७ वि० (२००१ ई०) से 'चण्डी' का 'हीरक'-जयन्ती-वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। 'चण्डी' के नए ६०वें वर्ष (अप्रैल, २००१ से मार्च, २००२) में 'कुम्भ'-पर्व—विशेषाङ्क की भाँति विशिष्ट अङ्क प्रकाशित होंगे। ये सभी विशिष्ट अङ्क 'चण्डी' के पाठकों की सेवा में सुरक्षित डाक—वी०पी०पी० द्वारा ही भेजे जाएँगे।

'चण्डी' के ६०वें वर्ष का पहला विशिष्ट अङ्क— 'मन्त्रात्मक सप्तशती' (पहला खण्डा) होगा। यह रियायती मूल्य की वी०पी०पी० द्वारा सभी पाठकों की सेवा में मार्च, २००१ के पहले सप्ताह में भेजा जाएगा।

दूसरा विशिष्ट अङ्क— **'मन्त्रात्मक सप्तशती' (द्वितीय खण्ड) : अप्रैल, २००१** के प्रथम सप्ताह में वी०पी० द्वारा जाएगा।

तीसरा विशिष्ट अङ्क— **'मन्त्रात्मक सप्तशती' (तृतीय खण्ड) : मई २००१** के प्रथम सप्ताह में वी०पी० द्वारा जाएगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पाठकों की माँग पर **गुप्तावतार बाबाश्री** द्वारा प्राप्त दुर्लभ **'मन्त्रात्मक सप्तशती'** का नई साज-सज्जा के साथ पुनः प्रकाशन हो रहा है। आशा है कि **'चण्डी' के पाठक-बन्धु** इसके **नवीन संस्करण** को न केवल स्वयं सहर्ष स्वीकार करेंगे, अपितु अपने परिचित श्रद्धालुओं को भी इसे प्राप्त करने की प्रेरणा देंगे। इससे हमें प्रकाशन-कार्य में विशेष सुविधा होगी।

—ऋतशील शर्मा

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल रचित : अनूठी चर्चा

साधक का संवाद

८. गोपन

एक मित्र के घर से लौट रहा था। मार्ग में **हलदार महाशय** से भेंट हो गई। दो कुलियों के सिर पर टोकरे रखाए बाजार से आ रहे थे। खड़े होकर मैंने नमस्कार किया और हँसकर पूछा, 'क्या दावत-आवत का आयोजन है?'

मेरी आवाज सुनते ही **हलदार महाशय** मुड़कर मेरे पास आ खड़े हुए थे और नमस्कार का उत्तर देने के बाद बड़े ही मधुर भाव से कहा, 'हाँ भाई, माँ का पूजन है, दावतें तो बड़े आदमियों के यहाँ होती हैं।' फिर जोर से हाथ पकड़कर एक विशेष पुलक के साथ कहा, 'तुम भी आना। एक अच्छे साधक आए हैं। अच्छा सत्सङ्ग होगा।' यह कहकर वे चल पड़े। कुछ दूर चलने के बाद फिर लौट पड़े और पुकारकर कहा, '**शर्माजी,** सुनो तो।' मैं उनके पास गया। उन्होंने कहा—आजकल **राखाल** नहीं दिखाई देता। **वीरेन्द्र** भी बहुत दिन से नहीं दिखाई देता। इन दोनों को अपने साथ लेते आना।

मैंने कहा—इधर दोनों पश्चिम में थे, अभी-अभी लौटे हैं। यदि घर पर होंगे, तो जरूर लेता आऊँगा।

उन्होंने कहा—अच्छी याद आई! उनके बाग में अच्छा कटहल होता है। एक कटहल भी लेते आना और कटहल न हो तो केला जरूर लाना।

मैंने कहा—मुझे कोई चीज लाने के लिए आपने आज्ञा नहीं दी?

उन्होंने हँसकर कहा—'अरे भाई, तुम लोगों को क्या कहना है! तुम लोग तो सभी नियमादि जानते हो। फिर तुम्हारे यहाँ तो बँधी व्यवस्था चलती है।' यह कहकर वे हँसकर चल दिए।

मैं घर आया, तब देखता हूँ **वीरेन्द्र** कमरे में बैठा हुआ है। मैंने हँसकर कहा कि—तुम तो खूब मिले, तुम्हारे यहाँ जाने से बचा।

वीरेन्द्र—सो तो नहीं होगा। माँ ने तुम्हें बुलाया है और इसी क्षण बुलाया है।

मैंने चकित होकर पूछा—कुशल तो है?

उसने हँसकर—हाँ, चलो। जल्दी करो। जब तक नहीं पहुँचोगे, सबको पेट दाबकर बैठे रहना पड़ेगा।

मैं समझ गया। मैंने हँसकर कहा— अच्छा, आता हूँ।

भीतर जाकर मैंने **पण्डित जी** से कहा— आप सब लोग भोजन कर लें, मैं भोजन नहीं करूँगा। शाम को मुझे दूसरी जगह जाना है। बहुत अच्छी कचौड़ियाँ और पूड़ी तथा हलुवा मेरे लिए तैयार रखिएगा। चार-पाँच आदमियों के मतलब भर का सामान हो। ठीक वैसा ही बनाना, जैसा पिछली बार बनाया था। शाम तक लौटूँगा।

घर से बाहर निकलकर मैंने एक टैक्सी की और मैं **वीरेन्द्र** को लेकर चल पड़ा। मार्ग में मैंने उससे **हलदार महाशय** के निमन्त्रण की बात कही। **वीरेन्द्र** ने कहा—**हलदार महाशय** के यहाँ तो जरूर चलना चाहिए। यदि **बङ्गाल** में कहीं पूजा होती है, तो एक इन्हीं के घर होती है। गत वर्ष मैं **दादा** के साथ गया था। तुम उन दिनों **मथुरा** में थे। वहाँ की पूजा देखकर मैं अवाक् रह गया। पूजा का विधि-विधान तो मैंने और भी जगहों में देखा है, परन्तु पूजा-काल में इस घर के लोगों में जो सात्त्विक भाव आ जाता है, वह और जगह मुझे आज तक देखने को नहीं मिला।

मैंने कहा—तुम ठीक कहते **हो। हलदार**

महाशय का परिवार-का-परिवार **माँ** का परम भक्त है। उनके घर के सभी लोगों के चेहरे से **माँ** का भाव टपकता रहता है।

इस तरह बातचीत करते हम लोग घर पर आ पहुँचे। टैक्सी से उतर भी नहीं पाए थे कि देखा कि **माँ** दरवाजे पर खड़ी हैं। जल्दी-जल्दी चलकर मैंने पास जाकर चरणों पर अपना सिर रख दिया। भीतर ले जाकर उन्होंने कमरे में बैठाया और कहा कि—कुछ सुस्ता लो और तब चलकर भोजन करो। मैंने तेरे लिए आज झोल भी बनाया है।

मैंने कहा— माँ, झोल तो मैं जरूर खाऊँगा और **दादा** कहाँ हैं?

वे बोलीं—'आज अष्टमी है ना, अनुष्ठान कर रहे हैं। चलो, तुम्हीं लोग भोजन करो।' यह कहकर वे उठ खड़ी हुईं और भोजन-गृह की ओर चली गईं।

हम लोग भी उनके आवाज देने पर हाथ-पैर धोकर भोजन-शाला में गए और अपनी-अपनी जगह बैठ गए। माँ ने भोजन परोसकर हम लोगों के सामने रख दिया और हम भोजन करने लगे मैंने कहा— आज **काली-बाड़ी** के **हलदार महाशय** ने हम लोगों को आमन्त्रित किया है। **दादा जी** को भी बुलाया है। उनके यहाँ पूजन है।

माँ प्रसन्न होकर बोलीं— बेटा, जरूर जाओ। **हलदार** के घर को मैं **'पीठ'** के तुल्य मानती हूँ। पर तेरे **दादा** तो न जा सकेंगे। उनका तो आज अनुष्ठान है।

मैंने कहा—उन्होंने घर के बाग का कटहल और केला माँगा है।

माँ प्रसन्न होकर बोलीं—आज देहात से कुछ कटहल आए हैं। उनमें एक बहुत अच्छा है और दो बाग के कटहल ले लेना। केले की एक घँवर भी ले लेना। कब जाओगे?

मैंने कहा—सन्ध्या समय जायँगे।

इस तरह बातचीत करते हुए हम लोगों का भोजन समाप्त हुआ। कमरे में आकर हम दोनों बातचीत करने लगे। बातचीत करते-करते हम लोग सो गए। ५ बजे उठे, तब देखा कि **माँ** चाय का टेबुल सजाए बैठी हैं। हाथ-मुँह धो और कुल्लाकर हम दोनों चाय पीने बैठे। चाय पी चुकने के बाद अब हम शहर जाने को तैयार हुए।

माँ ने कहा— बेटा, उस कोने में तेरा सब सामान तैयार रखा है।

वीरेन्द्र बाहर जाकर एक टैक्सी ले आया। घर के नौकर ने कटहल और केले के घँवर ले जाकर टैक्सी में रख दी। हम लोग टैक्सी पर बैठे और टैक्सी चली। घर पहुँचकर मैं अपने घर का सामान ले आया। अब वहाँ से हम काली-घाट को चले। टैक्सी शीघ्र ही **हलदार महाशय** के द्वार पर जाकर खड़ी हुई। हलदार महाशय के घर का उड़िया नौकर दरवाजे पर खड़ा था। मेरा संकेत पाकर वह केले की घँवर और कटहल एक-एक करके सब सामान उठा ले गया। हमने टैक्सी छोड़ दी और **हलदार महाशय** के घर में प्रवेश किया। **हलदार महाशय** आकर हमें अपने कमरे में लिवा ले गए। वहीं वे **महात्मा** भी बैठे थे, जिनके आने की सूचना **हलदार महाशय** ने मुझे दी थी। उन्होंने **महात्मा जी** को मेरा परिचय दिया। हम दोनों ने उनका समुचित अभिवादन किया। उनका आदेश पाकर हम एक चटाई पर बैठ गए। चार-पाँच सज्जन और बैठे थे। **महात्मा जी** उनसे किसी प्रसङ्ग पर कुछ कह रहे थे। मेरे बैठ जाने पर उन सज्जनों में से एक ने पूछा—तो क्या हुआ महाराज?

महात्मा जी बोले—'होना क्या था? मैं तो किसी से वाद-विवाद करता नहीं। वे सज्जन बे-मतलब ही **शाक्तों की निन्दा** कर रहे थे। इसी पर मैंने कहा कि आप एक ऐसे **सम्प्रदाय** के हैं, जिसमें **सत्य धर्म** को उच्च स्थान दिया गया है, परन्तु इस समय आप उसका बुरी तरह अपलाप कर रहे हैं। **शाक्त-धर्म** में **मूर्ति-पूजा** को कोई महत्त्व नहीं है। तब यह कहना कि **जगन्नाथ जी** के मन्दिर की अश्लील मूर्तियाँ **शाक्तों** की कला की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है, तो आपका यह कथन सत्य की

हत्या करने के बराबर है। **शाक्तों** को न **जगन्नाथ जी** के मन्दिर से कोई मतलब है और न उस मन्दिर की मूर्तियों से। यदि वे वहाँ जाते हैं, तो दूसरे यात्रियों ही की भाँति।' यह कहकर **महात्मा जी** चुप हो रहे। मैंने पूछा—तो फिर वे किसकी मूर्तियाँ हैं?

उन्होंने कहा—यदि आप **तिब्बत** की ओर जायँ, तो आपको पता लग जाएगा कि वे मूर्तियाँ किन्होंने बनवाई होंगी। :

उन सज्जनों में से एक सज्जन ने कहा— हाँ **स्वामी जी,** परन्तु ये निन्दक ऐसी बातों को कब मानने लगे? अभी उस दिन एक उपदेशक महाशय एक पुस्तकालय में भाषण कर रहे थे। उन्होंने कहा कि **'शाक्तों** ने सभी ग्रन्थों को भ्रष्ट कर डाला है। शास्त्रों में जहाँ भी कहीं **मांस-मदिरा** के खाने-पीने की बात लिखी मिले, यही समझो कि **शाक्तों** ने अपनी ओर से बनाकर वहाँ वह सब लिख दिया है।'

महात्मा जी मुस्कराते हुए बोले—परन्तु इस प्रकार के निन्दा-वाद से **शाक्तों** का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, **सत्य** दब नहीं सकता! भला इन भले आदमियों से कोई पूछे कि यदि **शाक्तों** ने धर्म-ग्रन्थों में **मांस-मदिरा** के खान-पान के सम्बन्ध में बनाकर श्लोक लिखे होंगे, तो अपने घर की ही पुस्तकों में लिखे होंगे। जो **शाक्त** नहीं हैं, उनके घर की उन पुस्तकों में वे श्लोक नहीं लिखे गए होंगे, परन्तु ऐसी प्रतियाँ देश में नहीं पाई जाती हैं। उस तरह के वचन तो **शाक्त** क्या अशाक्त, सभी के घरों की पुस्तकों में समान रूप से मिलते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि ये लोग अपने प्रचार के आगे **सत्य-असत्य** की परवाह नहीं करते। इधर सर्व-साधारण लोग उतने विज्ञ नहीं कि उपदेशकों के वाक्-छल को समझें।

एक अन्य सज्जन बोले—**महात्मा जी,** एक जमाने से **शाक्त-धर्म** की निन्दा का प्रचार इस देश में व्यापक रूप से हो रहा है। इसका प्रतीकार तो होना ही चाहिए।

महात्मा जी मौन ही रहे। इसी बीच में चार-पाँच अन्य सज्जन वहाँ आ गए। **हलदार महाशय** ने उन सबका एक-एक करके **महात्मा जी** को परिचय दिया।

ये सब लोग हमारे भी परिचित थे। इनमें एक सज्जन **चारू बाबू** बड़े अच्छे गायक थे। वे केवल **माँ** के भक्ति-परक गीत ही गाया करते थे। **हलदार महाशय** ने उनका परिचय देते हुए उनकी यह विशेषता भी बताई थी। अतएव **महात्मा जी** ने उत्सुकता के साथ **चारू बाबू** को सम्बोधित करके कहा—**बाबू, माँ** का गुण-कीर्तन क्या मुझे आप नहीं सुनाएँगे?

चारू बाबू ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा—'अवश्य सुनाऊँगा।' यह कहकर उन्होंने गाना प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी देर तक बड़ा आनन्द रहा। **चारू बाबू** ने जब गाना बन्द कर दिया, तब **महात्मा जी** ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। सचमुच वे बहुत सुन्दर गाते थे।

इसी बीच में **हलदार महाशय** ने आकर कहा—'अब हम सब लोगों को पूजा-गृह में पधारना चाहिए।'

इस पर **महात्मा जी** उठ खड़े हुए। हम सब लोगों ने उनका अनुसरण किया और यथा-क्रम हाथ-पैर धोकर पूजा-गृह में प्रवेश किया। **हलदार महाशय** ने सबको आसनों पर बिठाया। जब सब लोग बैठ गए तब उन्होंने **महात्मा जी** से कहा—कृपा-पूर्वक आज आप **आचार्य** के आसन पर विराजमान हों और अर्चन करें।

महात्मा जी ने कहा—**हलदार महाशय,** इस घर में **आचार्य** के आसन पर **हलदार** के अतिरिक्त और कोई नहीं बैठ सकता है।

इस पर **हलदार महाशय** चुपचाप आसन पर बैठ गए और पूजन प्रारम्भ किया।

मैं **हलदार महाशय** के पूजन में कई बार शामिल हो चुका हूँ और प्रत्येक बार मुझे नया-नया अनुभव हुआ है। इस बार यह विचित्र बात देखने में आई कि जब-जब उनको जिस

वस्तु की आवश्यकता पड़ी, तब-तब वह वस्तु बिना उनके माँगे ही उनके घर की लड़कियाँ उन्हें बराबर आकर देती गईं। एक क्षण के लिए भी न तो रुकना पड़ा और न एक क्षण पहले वह वस्तु लाकर उनके पास रखी ही गई। हम सब लोग भी अपने **न्यास-ध्यान-जप** में बराबर लगे रहे। **पुष्पाञ्जलि** उस दिन की सी वहाँ भी और पहले कभी मैंने नहीं देखी थी। **पुष्पाञ्जलि** के बाद उपस्थित साधक **तर्पण-क्रिया** में संलग्न हुए। बीच-बीच में **चारू बाबू** अपनी अलग आनन्द-वर्षा करते जा रहे थे। एक सज्जन ने यह प्रश्न कर दिया कि 'आजकल **शाक्त-धर्म** पराभव को प्राप्त है। इसके अभ्युदय का कोई उपाय होना चाहिए।'

महात्मा जी ने गम्भीर स्वर में कहा—**हलदार महाशय** के पूजा-गृह में तो कम-से-कम आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी। फिर **शाक्त-धर्म** का पराभव ही कहाँ हो रहा है? आज भी **भारत** की पवित्र भूमि में **माँ** के नाम का अबाध रूप से व्यापक प्रचार है। कौन नहीं जानता कि वर्तमान युग में इस देश की एकमात्र प्रधान पुस्तक **सप्तशती** ही है। फिर इसके सिवा **भारत** के प्रत्येक प्रान्त के निवासियों में जो सम्पन्न, सभ्य तथा शिक्षित हैं, उनमें भी **शाक्तों** की कम संख्या नहीं है। **शङ्कराचार्य** के चारों मठों में **श्रीयन्त्र** का आज भी पहले ही की भाँति नित्य-प्रति पूजन होता है। **कामाख्या, कालीघाट** की **काली, गुह्येश्वरी, विन्ध्याचल, ज्वालामुखी, क्षीर-भवानी, अम्बा माता, मुम्बा देवी, मीनाक्षी, कन्या-कुमारी** का प्रभाव यही सिद्ध करता है कि **शाक्त-धर्म** इस देश का एक जीवित धर्म है। आधुनिकों में **श्रीरामकृष्ण परमहंस** के शिष्य **स्वामी विवेकानन्द** ने अपने सङ्घ का संगठन **कौल-धर्म** के आदर्श पर किया है। **स्वामी रामतीर्थ** और उनके शिष्य **नारायण स्वामी** उच्च कोटि के **कौल** थे और जाने दीजिए, **अयोध्या** और **मथुरा** के **वैष्णवाचार्य** गुप्त रीति से **कौल-धर्म** का ही पालन करते हैं।

महात्मा जी का भाषण समाप्त भी नहीं हो पाया था कि **हलदार महाशय** ने वन्दना पढ़नी शुरू कर दी। जब वन्दना समाप्त हुई और अवसर मिला, तब मैंने **महात्मा जी** से निवेदन किया—महाराज, आपने जो कहा, सो सब ठीक है। परन्तु जनता तो यही जानती है कि **शाक्त-धर्म** का कोई अस्तित्व नहीं है। उनका न अपना कोई प्रगट सङ्गठन है, न कोई सभा है और न उनकी पत्र-पत्रिकाएँ ही निकलती हैं।

महात्मा जी जोश में थे। उन्होंने मुझे रोककर कहा—आप बाजार में रहते हैं और आप **शाक्त-धर्म** को भी बाजारू रूप में देखना चाहते हैं, परन्तु **शाक्त-धर्म** कोई बाजारू वस्तु नहीं है। न पहले कभी वह ऐसा रहा है और न भविष्य में ही ऐसा बन सकेगा। जो उसको ऐसा रूप देने का प्रयत्न करेगा, उसी का पराभव होगा। इस देश की **धार्मिक संस्कृति** का यही रहस्य है—**शाक्त-धर्म।** यह सदैव **गुप्त** रहा है।

मैंने कहा—**गुप्त** कहाँ है? सभी लोग तो उसकी एक-एक बात जानते हैं। यह भी जानते हैं कि अमुक-अमुक व्यक्ति **शाक्त** हैं।

इधर से **गुप्त** बना देने से यह महा-हानि हुई है कि स्वयं **शाक्त** लोग अपने धर्म की मामूली बात तक नहीं जानते।

महात्मा जी ने कुछ रोष के साथ कहा—लोग जानते होंगे। उनके जानने का हम लोगों की दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है। एक **द्विज** का **गायत्री** का जानना एक बात है और एक म्लेच्छ का पुस्तक से पढ़कर **गायत्री** का जानना दूसरी बात है। लोग जानते होंगे कि अमुक-अमुक व्यक्ति **शाक्त** हैं, परन्तु क्या कभी किसी की हिम्मत पड़ी है कि वह प्रकट रूप से कहे कि अमुक-अमुक व्यक्ति **शाक्त** हैं? यही तो इसका रहस्य है।

इतने ही में **हलदार महाशय** ने अन्तिम वन्दना करने के लिए **महात्मा जी** से कहा और **महात्मा जी** ने उनके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। **पूजा** के विसर्जन होने पर परस्पर अभिवादन करने के बाद जब हम लोग घर के बाहर निकले, तब देखा—लोग घाट की ओर स्नान करने को जा रहे हैं। उषा-काल का वह मनोरम प्रभात उस दिन हम

लोगों को सचमुच ही अत्यधिक आनन्द-दायक प्रतीत हुआ।

(२)

दूसरे दिन बाजार में अधिक काम होने के कारण मैं **हलदार महाशय** के घर जाकर उन **महात्मा जी** के दर्शन नहीं कर सका। **महात्मा जी** से मैं पुनः इसलिए मिलना चाहता था कि उस निशा में उनसे जो बातचीत हुई थी, बहुत स्पष्ट नहीं हुई थी। बातचीत के स्वर से वे मुझे बहुज्ञ प्रतीत हुए। मुखाकृति और हाव-भाव से वे स्पष्ट रूप से पक्के **साधक** जान पड़ते थे। सन्ध्या-समय जब मुझे अपने काम-काज से छुट्टी मिली, तब मैं बहुत थक गया था। अतएव जल्दी ही शौचादि से निवृत्त होकर मैंने **सन्ध्या-वन्दन** किया और विश्राम करने के लिए मैं अपने कमरे में घुस गया।

'आज रात को भोजन नहीं करूँगा', यह बात **पण्डित जी** से मैंने पहले ही कह दी थी। इन दिनों घर के सब लोग देश चले गए थे। केवल **पण्डित जी** और नौकर ही रह गए थे। मैं लेटा ही था कि **रघुनाथ** ने आकर कहा कि 'बाहर दो सज्जन आए हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।' मैंने पूछा— नाम भी बताया है?

उसने कहा—हाँ, अपने को **हलदार महाशय** कहते हैं।

मैंने कहा—अच्छा, बाहरवाला कमरा खोलो, मैं आता हूँ।

मैं **रघुनाथ** के पीछे-पीछे वैसे ही चल पड़ा। बाहर आकर देखा कि **हलदार महाशय** के साथ वही **महात्मा जी** खड़े हैं। मैंने यथा-विधि उनको प्रणाम किया और **हलदार महाशय** को नमस्कार करते हुए कहा— मेरा अहोभाग्य है कि **महात्मा जी** को अपने साथ लाकर पद-धूलि से मेरी कुटिया को पवित्र किया है।

महात्मा जी ने हँसते हुए कहा—यही बात हम लोग भी कल कह सकते थे, पर भूल गए।

रघुनाथ .कमरा खोल चुका था। मैंने कहा—आइए, भीतर पधारिए।

हम तीनों भीतर जाकर कमरे में बैठ गए।

महात्मा जी कुरसी पर बैठते-बैठते बोले—कल मैं यहाँ से जा रहा हूँ। इसलिए सोचा कि आपके भी दर्शन कर लूँ। देखें, अब फिर कब भेंट होती है! **हलदार महाशय** आपके बड़े प्रशंसक हैं। मैं भी देखता हूँ कि आपके हृदय में **जगदम्बा** के प्रति विशेष अनुराग है।

मैंने कहा—महाराज, मैं तो केवल नाम भर जानता हूँ। आप लोगों ने कान पकड़कर जो बता दिया है, उसे नहीं भुलाया। आप इस तरह जो कह रहे हैं, इसे मैं आपकी विशेष अनुकम्पा ही समझता हूँ। आप ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं सचमुच **माँ** का सेवक बन सकूँ।

महात्मा जी गम्भीर स्वर में बोले—अब आपको किसी के आशीवा ; की जरूरत नहीं है।

मैंने उठकर **महात्मा जी** के चरणों की धूल लेकर मस्तक से लगाई। फिर **हलदार महाशय** की ओर मुँह करके विनम्रता के साथ कहा—यह आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप कुछ सत्कार करने की आज्ञा दें।

हलदार महाशय ने हँसते हुए कहा—सो तो मैंने घर से चलते ही **महात्मा जी** से कह दिया था कि यदि **शर्मा जी** के यहाँ चल रहे हो, तो जल्दी छूटने नहीं पाओगे। अच्छा, कोई हर्ज नहीं है। आपका सत्कार स्वीकार करना हम लोगों का कर्तव्य है।

मैंने **रघुनाथ** को आवाज दी। वह बाहर ही खड़ा था। मेरी आवाज सुनते ही वह उसी क्षण मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैंने उससे कहा—**पण्डित जी** से जाकर कहो कि **पूजा-घर** में ठीक-ठीक **पूजा** की तैयारी करें और जल्दी करें।

वह चुपचाप वहाँ से चला गया। **हलदार महाशय** **महात्मा जी** का परिचय देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने कहा—**शर्मा जी, काली माई** की कृपा से मेरे यहाँ प्रायः **साधक** लोग पधारते रहते हैं। अपने इस लम्बे जीवन में भले-बुरे सभी प्रकार के **साधकों** का सत्सङ्ग किया

है, परन्तु उच्च कोटि के **साधक** बहुत ही कम देखने में आए हैं। ऐसे **साधक,** जो शास्त्रज्ञ भी हों और **साधना** में कुशल भी हों, दिन-दिन कम होते जाते हैं। बहुत दिनों के बाद इन **महात्मा जी** के रूप में उस कोटि के **साधक** के दर्शन हुए हैं। मैं तो अपने को धन्य मानता हूँ।

मैंने कहा—आपका कथन सर्वथा सत्य है। मैं भी ऐसा ही अनुभव कर रहा हूँ।

इस पर **महात्मा जी** बार-बार कुछ ऊँचे स्वर में **'माँ'** का नाम उच्चारण करने लगे। फिर वे धीरे से बोले—भाई, यह सब बे-मतलब की बातें हैं। इनके कहने की क्या जरूरत है? आओ, थोड़ी देर तक बैठकर धर्म की चर्चा की जाय क्योंकि सार वस्तु तो वही है।

उनके इस कथन पर हम दोनों ही लज्जित-से हो गए, परन्तु बातचीत बन्द न हो, इसलिए मैंने **महात्मा जी** से कहा—कल आपने कहा था कि **मथुरा** और **अयोध्या** के **वैष्णवाचार्य** भी **कौल-धर्म** के अनुसार यजन करते हैं, यह बात मेरे गले से नीचे नहीं उतरती है।

हँसते हुए **महात्मा जी** ने कहा—हाँ, आप ठीक कहते हैं। मेरी बात का कोई विश्वास नहीं करेगा, परन्तु मैंने जो कुछ कहा है, सत्य कहा है और व्यक्ति-गत अनुभव से कहा है। **अयोध्या** में भी मैंने उन आचार्यों के साथ बैठकर **कौल-क्रम** से कई बार यजन-भजन किया है, परन्तु वे इस विषय में अति **गुप्त** रहते हैं। तो भी **साधकों** के आगे वे प्रकट हो जाने में सङ्कोच भी नहीं करते। हाँ, **साधक** सचमुच **साधक** होना चाहिए।

मैंने कहा—और आपने कहा था कि **स्वामी विवेकानन्द** ने **कौल-धर्म** के आदर्श पर अपने सङ्घ का सङ्गठन किया है। सो कैसी बात है?

महात्मा जी बोले—सो तो आप आसानी से जान सकते हैं। **रामकृष्ण मिशन** के साधुओं से थोड़ा भी मेल-जोल कर लेने पर कोई भी **साधक** जान जायगा कि उनमें से कितने **कौलाचारी** हैं और यह भी कि उनमें कितने **पूर्णाभिषिक्त** हैं। मैंने इस साधु-मण्डल के साधुओं का भी अच्छा सत्सङ्ग किया है। उनमें बहुत से उच्च कोटि के **साधक** विद्यमान हैं। भाई, सत्सङ्ग करने पर ही **साधकों** के दर्शन होते हैं। फिर **कौलों** के दर्शन तो कठिनाई से ही मिलते हैं। यह सचमुच ही एक अति **गुप्त मार्ग** है।

मैंने कहा—आपने कहा था कि **शाक्त-धर्म** में मूर्ति आदि का कोई स्थान नहीं है, परन्तु देखने में तो यह आता है कि **शाक्त-धर्म** ही **मूर्ति-पूजा** का विशेष रूप से प्रचार करता है।

महात्मा जी बोले—**शर्मा जी, शाक्त-धर्म** से मेरा मतलब था **कौल-धर्म** से। आप नित्य ही अपने पूजन में देखते हैं, हम लोग तो **माँ** की **यन्त्र** में केवल भावना करके ही भजन-पूजन करते हैं, **मूर्ति** आदि की कब कहाँ पूजा करते हैं? फिर हमारे प्राचीन **पीठ-स्थानों** में ही मूर्तियाँ कहाँ हैं? वहाँ तो चिह्न मात्र ही पाए जाते हैं।

हलदार महाशय अभी तक चुपचाप बैठे सुन रहे थे। चौंककर एकाएक उन्होंने कहा—**स्वामी जी,** मैं हाल में पश्चिम गया था। **प्रयागराज** में मैंने **ललिता पीठ** का दर्शन किया। वहाँ तो मुझे **ललिता जी** की शिला-मूर्ति ही के दर्शन हुए।

महात्मा जी ने कहा—आप ठीक कहते हैं। मैंने उस स्थान में कुछ काल तक निवास भी किया है। वहीं मैंने कुछ लोगों को कहते सुना है कि यह **ललिता-पीठ** नहीं है। फिर **ललिता जी** के **भैरव यमुना जी** के पार अति दूर बताए जाते हैं! यह सब देख सुनकर मैंने यह निश्चय किया कि **ललिता-पीठ** यदि **प्रयाग** में है, तो वह **कड़े** में है। वहाँ कोई मूर्ति भी नहीं है और स्थान के **भैरव** भी समीप ही हैं। इसके सिवा उस स्थान की महिमा भी बहुत बढ़ी-चढ़ी है। यह सच है कि वह स्थान **शीतला जी** के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, **कड़े** ही में **ललिता- पीठ** होना चाहिए और **कड़ा प्रयाग-मण्डल** के अन्तर्गत ही है।

मैंने कहा—**स्वामी जी महाराज,** आपने यह तो बहुत ही महत्त्व की बात बतलाई है, परन्तु

आपने जो यह कहा था कि सारे देश में **शाक्त-धर्म** का महत्त्व स्थापित है, साथ ही यह कहते हैं कि **कौलों** का दर्शन पाना दुर्लभ है, इसकी सङ्गति आप कैसे लगाएँगे? मैं तो **कौल-धर्म** को ही **शाक्त-धर्म** मानता हूँ। जो **कौल** नहीं है, वह यदि अपने को **शाक्त** कहता है, तो भूल करता है। मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।

महात्मा जी ने बड़े मधुर स्वर में कहा—आप बहुत ठीक समझते हैं, परन्तु **माँ** के प्रेम का भाव आपमें इतना भर गया है कि प्रारम्भ की बातें आप भूल गए हैं। भाई, **कौल** तो अन्तिम दर्जा है। **शाक्त-धर्म** में और भी **आचार** हैं। उनको आप क्यों भुला देते हैं? उन **छः आचारों** के माननेवालों में प्रारम्भ के तीन आचार माननेवाले **कौल** नहीं हो सकते; परन्तु वे **शाक्त** हो सकते हैं।देश में उन्हीं का बाहुल्य है। इन्हीं में से जब जिसकी भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, तब वह **क्रम** से एक **आचार** के बाद दूसरे **आचार** का अधिकारी होता है और अन्त में **कौलत्व** को प्राप्त करता है। आप जैसे सभी भाग्य-शाली नहीं हैं। सौभाग्य से आपको **भैरवी माँ** के रूप में **सद्-गुरु** की प्राप्ति हो गई, जिनके प्रसाद से एक ही झोंके में आपने **कौलत्व** को प्राप्त कर लिया। ऐसे अवसर सबके लिए सुलभ नहीं हैं। **माँ** की विशेष कृपा होने पर तो ऐसा अवसर प्राप्त होता है।

अपना कथन समाप्त कर **महात्मा जी** गम्भीर स्वर में बार-बार **माँ** का नाम उच्चारण करने लगे। ज्यों ही वे चुप हुए, **पण्डित जी** ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने कहा—**पूजा** का सब सामान ठीक हो गया है। आप चाहे चलकर देख लें।

मैंने कहा—आप ऊपर चलें, हम लोग आते हैं।

इसके बाद मैंने **हलदार महाशय** से कहा—**महाशय जी,** आइए, अब हम लोग ऊपर चलें।

मेरे यह कहने पर **हलदार महाशय** उठ खड़े हुए। **महात्मा जी** भी उठे। अब हम सब लोग ऊपर गए। हाथ-पैर धोकर हमने **पूजा-घर** में प्रवेश किया। सब सामान यथा-स्थान रखा देखकर **महात्मा जी** ने हँसते हुए कहा—**शर्मा जी, हलदार महाशय** जैसा कहते थे, वैसा ही मैंने आपको पाया। आपके **पण्डित जी** भी अच्छे जानकार जान पड़ते हैं। देखो, सब सामान यथा-स्थान रखा है। कहीं भी कोई त्रुटि नहीं है।

महात्मा जी पूजा करने बैठे। उन्होंने संक्षिप्त पूजा की, परन्तु भाव-पूर्ण ढङ्ग से की। प्रसाद ग्रहण करने के उपरान्त मैंने उनका और **हलदार महाशय** का **वीर-पूजन** किया, परन्तु मेरी पूजा उन दोनों महाशयों ने बहुत आग्रह करने पर ही स्वीकार की। मैं उनके साथ घर के बाहर तक आया। तीन-साढ़े तीन का समय रहा होगा। मैंने कहा—ठहरिए, सवारी मँगवा दूँ।

हलदार महाशय बोले—हम लोग पैदल ही जायँगे। इस पर मैंने उन दोनों का समुचित रूप से अभिवादन किया। **महात्मा जी** ने कहा—**शर्मा जी,** आपके सङ्ग से बहुत ही आनन्दित हुआ हूँ। देखें, **माँ** अब यह अवसर कब उपस्थित करती हैं?

मैंने कहा—मुझ सेवक पर आपकी कृपा बनी रहे, यह मेरी प्रार्थना है।

महात्मा जी ने मुझे गले से लगाते हुए गद्‌गद् स्वर में कहा—आत्मीय होकर ऐसा क्यों कहते हो?

यह कहकर वे विदा हुए। **महात्मा जी** का इन दोनों अवसरों का सत्सङ्ग मैं कभी नहीं भूल सका। यद्यपि उनसे फिर कभी भेंट नहीं हुई, परन्तु उनका प्रभाव मुझ पर आज तक पड़ा हुआ है। सचमुच ही वे एक उच्च-कोटि के **साधक** थे।

* * *

‘चण्डी’-हीरक-जयन्ती-वर्ष

‘कुम्भ’-पर्व— विशेषाङ्क

‘विजय’ संवत् २०५७ वि० (सन् २००१ ई०)

* * *

‘कुम्भ’-पर्व-रूपी ज्ञान-विज्ञान

(विस्तृत चर्चा)

पृष्ठ ३ से २४

‘कुम्भ’-पर्व की पावन तिथियाँ

(परिचय एवं माहात्म्य)

पृष्ठ २५ से ४४

‘कुम्भ’-पर्व-विभूषित ‘तीर्थ-राज’ प्रयाग

(विवरण-सहित विशेष कृत्य)

पृष्ठ ४५ से ७२

* * *

सम्पादक

रमादत्त शुक्ल

ऋतशील शर्मा

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक :

परावाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

चण्डी-धाम, प्रयाग-राज (उ०प्र०)-२११००६, ✆ : ५०२७८३

अनुदान २०/-

समर्पण

पण्डित देवीदत्त शुक्ल

'कुम्भ'-पर्व, २००१ का आयोजन शीघ्र ही प्रारम्भ होने जा रहा है। हमारा ध्यान **'कुम्भ'-पर्व, संवत् १९९८ (सन् १९४२ ई०)** के प्रति आकर्षित होता है। यह वही **'कुम्भ'-पर्व** था, जब **१५ जनवरी, १९४२** को **'प्रयाग'** में **'प्रथम शाक्त-सम्मेलन'** हुआ और उसमें स्वीकृत पहले प्रस्ताव द्वारा **'चण्डी'-मासिक पत्रिका** को प्रकाशित करने की ज्ञान-कर्म-मयी इच्छा प्रकट हुई। यह **ज्ञान-कर्म-मयी इच्छा** ठीक वैसी ही थी, जैसी एक **'कुम्भ'-कार** के मन में एक **'नवीन कुम्भ'** को आकार देने के समय में होती है।

पण्डित शिवनाथ काटजू

'चण्डी'-पत्रिका-रूपी नवीन एवं अभूत-पूर्व 'कुम्भ' को स्वरूप देनेवालों में **'सरस्वती'-पत्रिका के यशस्वी सम्पादक पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी** एवं उनके शिष्य **पण्डित शिवनाथ काटजू जी** मुख्य थे। यह एक सुखद अवसर है कि आज **५ जनवरी, २००१** को **श्रीशिवनाथ काटजू की ९२ वीं 'जयन्ती'** पर हम **'चण्डी'** का प्रस्तुत **'कुम्भ'-पर्व-विशेषाङ्क** प्रस्तुत करने में सफल हो रहे हैं। अतएव आपकी पावन स्मृति को ही यह अङ्क सादर समर्पित है।

सचमुच **'कुम्भ'-पर्व, 'कुम्भ'-पर्व की पावन-तिथि, 'कुम्भ'-विभूषित तीर्थ-राज प्रयाग** के **'त्रिवेणी-सङ्गम-क्षेत्र** का ही यह चमत्कार है कि कोई विशेष सुविधाएँ— साधन न होते हुए भी **'चण्डी'-रूपी 'कुम्भ'—'हीरक'-जयन्ती-वर्ष (६० वें वर्ष)** में अग्रसर हो रहा है। इसके पीछे अनेक महानुभावों की **मङ्गल-कामनाएँ** हैं, विशेष रूप से **'भारत-धर्म-महा-मण्डल'** के **श्रीजी महाराज स्वामी ज्ञानानन्द जी** की **११-१-१९४२ की 'मङ्गल-कामना'**।

सिद्ध मङ्गल-कामनाओं, शुभ-कामनाओं के साथ प्रतिष्ठित **'चण्डी'-रूपी 'कुम्भ'** को **गुप्तावतार बाबाश्री, 'राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी महाराज, 'कुल-योगिनी' माई जी, पण्डित हरदत्त शास्त्री, पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री, पण्डित कन्हैयालाल ज्योतिषी, पण्डित नारायण शास्त्री खिस्ते, पण्डित गोविन्द शास्त्री दुगवेक, मेजर जनरल धन शमशेर जङ्ग बहादुर राणा, पण्डित श्री हरिशास्त्री दाधीच, श्रीश्यामानन्दनाथ, श्रीकालीचरण पन्त, स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती, स्वामी शाश्वतानन्द सरस्वती, पण्डित नथमल दाधीच** आदि-आदि विभूतियों ने अपनी **तपस्या-रूपी वाणी-लेखनी** से कैसा **दिव्य** बनाया है, यह कोई भी **'चण्डी'-रूपी 'कुम्भ'** के **'ज्ञान'-रूपी जल का पान** कर जान सकता है। **'हीरक-जयन्ती-वर्ष'** की प्रथम बेला में आप सभी के प्रति हमारा शत-शत नमन!

❖ **ऋतशील शर्मा**

'तीर्थ-राज' प्रयाग, ५ जनवरी, २००१

॥ ॐ कुम्भाय नमः ॥

'कुम्भ'-पर्व-रूपी ज्ञान-विज्ञान

विस्तृत चर्चा

१- 'कुम्भ'—मेला नहीं, पर्व है! ४

२- 'कुम्भ'-पर्व की परम्परा ५

३- 'कुम्भ'-पर्व और वेद ६

४- 'कुम्भ'-पर्व की पौराणिक धारणा ७

५- 'कुम्भ'-पर्व एवं 'समुद्र-मन्थन'-कथा १०

६- 'कुम्भकावस्था' १२

७- 'संसार'-रूपी घोर समुद्र का परिचय १३

८- 'कुम्भ'-पर्व का लक्ष्य—'अमृत' १४

९- 'कुम्भात्मिका विद्या' १६

१०- 'कुम्भ'-पर्व के रक्षक देव—'वृहस्पति-सूर्य-चन्द्र-शनि' १७

११- 'अमृत-पान' अर्थात् विपरीत-करणी मुद्रा २१

१२- 'कुम्भ'-पर्व के मुख्य आराध्य—'महा-देव' २२

१३- 'अमृत के उद्धारक— गरुड़' २४

* * *

'कुम्भ'—मेला नहीं, पर्व है!

आज-कल **'कुम्भ'** को अधिकतर **'कुम्भ'-मेला** कहा जाता है। सम्भवतः इसलिए क्योंकि राजकीय भाषा में इसे **'कुम्भ'-मेला** ही कहा जाता है। **'कुम्भ'-मेला** से सीमित अर्थों का बोध होता है! **'मेला'** उसे कहते हैं, जहाँ जन-समुदाय **क्रय-विक्रय, मनो-विनोद, खेल-तमाशे, नाटक, चल-चित्र, भोजन** आदि के लिए एकत्रित होता है। **'मेले'** के इस अर्थ को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि आज उक्त बातों की सर्वत्र प्रधानता है, तथापि **'कुम्भ' का आयोजन** हमारे शास्त्रों द्वारा इन बातों के लिए कदापि नहीं हुआ है।

'कुम्भ' के साथ **'पर्व'** कहने पर ही **पूरा भाव** स्पष्ट होता है। **'पर्व'**-शब्द से **'काल'** की विशिष्ट स्थिति का बोध होता है। **विशेष तिथियाँ, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, चन्द्र-ग्रहण, सूर्य-ग्रहण** आदि— ये सभी **'पर्व'** अर्थात् **विशेष काल** कहलाते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि **'काल'** के सम्बन्ध में भी हमारा आज का ज्ञान आधा-अधूरा है। हमें **'काल-मान'** को ही **'काल'** बताया जा रहा है। दिन या रात्रि के **'टाइम'** को हमारे यहाँ **'काल'** कभी नहीं समझा गया। हमारे यहाँ तो **'काल'** एक **द्रव्य** अथवा **तत्त्व** माना गया है—**'पृथिव्यापस्तेजो-वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।'** अर्थात् **१ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा** और **९ मन—** ये द्रव्य हैं। इन्हीं द्रव्यों से **सृष्टि** होती है। कुछ **नया बनता** है, कुछ **मिटता** है।

हमारे यहाँ **'न्याय'** स्पष्ट कहता है—**'जन्यानां जनकः कालः।'** (न्याय-मुक्तावली)। अर्थात् उत्पन्न होने योग्य वस्तु को उत्पन्न करनेवाला—**'काल'** है। **'काल'** के साथ सदैव **'बीज'** होता है। पुराने **संवत्, वर्ष, युग** का बीतना और **नए संवत्, वर्ष, युग** का आना— यों ही नहीं होता। सदैव **नए बीज का जनन** होता है, जिससे नई **'गति'** पैदा होती है। **नई गति से नवीन प्रकार का जीवन** प्राप्त होता है।

इस प्रकार **वेद, महा-भारत, पुराण**—सभी **'काल'** को **'नाम'-रूपात्मक जगत्** में सबसे अधिक शक्तिशाली मानते हैं। **'काल'** ही सबको **'गति'-शील** रखता है। यही सबको आगे बढ़ाता है और समेट लेता है। **'काल'** को हमारे यहाँ **परमात्मा की 'क्रिया'-शक्ति** भी कहा गया है। **'काल'** के इस महत्त्व को जानते हुए ही हमारे यहाँ **'पर्वों'** अर्थात् **विशेष काल का निर्धारण** हुआ है। सभी **पर्वों** में **'कुम्भ'—पर्व** की विशालता, महिमा सर्वोपरि है। अस्तु! आवश्यकता है कि **'कुम्भ'-पर्व के मूल उद्देश्यों— भावनाओं** की ओर हम ध्यान दें। यदि ऐसा होगा, तभी हम कह सकेंगे कि **'कुम्भ', २००१— नई २१वीं सदी का पहला 'कुम्भ'** है और इसके द्वारा आनेवाली नई सदी **'कुम्भ'-पर्व के लक्ष्य— 'अमृत'-प्राप्ति की ओर** अग्रसर होगी।

* * *

'कुम्भ'-पर्व की परम्परा

'कुम्भ'-पर्व की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई, इसके सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सुनाई पड़ती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि भारत-वर्ष के स्वर्णिम युग— **'गुप्त-साम्राज्य'** के समय **'कुम्भ'-पर्वों के काल और स्थान** निश्चित किए गए। कुछ कहते हैं कि **'कुम्भ'-पर्व** का सूत्रपात **सम्राट् हर्षवर्धन शीलादित्य** के समय से हुआ और कुछ लोग कहते हैं कि **जगद्-गुरु भगवान् आदि शङ्कराचार्य** के द्वारा **'कुम्भ'-पर्व** प्रचलित हुआ। वास्तव में ये सभी बातें पूर्ण सत्य नहीं हैं।

गुप्त-काल के किसी भी अभिलेख में **'कुम्भ'-पर्व** का उल्लेख नहीं है। यदि **'कुम्भ'-पर्व** का प्रारम्भ **गुप्त-काल** में हुआ होता, तो इसका उल्लेख अभिलेखों में अवश्य होता।

'हर्ष-चरित', हर्षवर्धन के ताम्र-पत्र आदि में भी यह उल्लेख नहीं है कि **'कुम्भ'-पर्व** की परम्परा **महाराज हर्षवर्धन** ने प्रारम्भ की थी। **महाराज हर्षवर्धन** के समय **चीनी यात्री हुए-त्साङ्ग** ने भी अपने **'यात्रा'-विवरण** में यह कहीं नहीं लिखा है कि **महाराज हर्षवर्धन** ने **'कुम्भ'-पर्व** को प्रारम्भ किया। **हुए-त्साङ्ग** ने तो केवल यह लिखा है कि **महाराज हर्षवर्धन प्रयाग-राज के 'कुम्भ'** एवं **'अर्द्ध-कुम्भ'** में सम्मिलित होते थे और अपना सर्वस्व दान करते थे।

भगवान् आदि शङ्कराचार्य का आविर्भाव भी **वैदिक परम्परा का पुनरुद्धार** करने के लिए हुआ था। उन्होंने **वैदिक परम्परा का प्रसार-प्रचार** मात्र किया। कोई नई प्रथा उन्होंने प्रारम्भ नहीं की। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने **वैदिक काल से प्रचलित 'कुम्भ'-पर्व की परम्परा का उद्धार एवं प्रचार** किया, न कि स्वयं प्रारम्भ किया।

संक्षेप में, **'कुम्भ'-पर्व की परम्परा** अत्यन्त प्राचीन है। **वेदों, पुराणों** के विभिन्न सन्दर्भों से यह बात सहज ही स्पष्ट होती है। मूल रूप में **'कुम्भ'-पर्व की परम्परा** मनुष्य के द्वारा रत्न— ऐश्वर्य, सुख— आरोग्य, आत्म-ज्ञान— अमरत्व की इच्छा से जुड़ी हुई है। **वेद, पुराण** आदि प्राचीन भारतीय धर्म-शास्त्र मनुष्यों की इन इच्छाओं से सम्बन्धित **ज्ञान-विज्ञान** से भरे पड़े हैं।

सर्वश्रेष्ठ **'आत्म-ज्ञान'— 'अमरत्व'** को समझने या समझाने के लिए ऋषियों-मुनियों ने **'कुम्भ'**-रूपी सुन्दर प्रतीक को हमारे सम्मुख रखा है। उदाहरण के रूप में निम्न-लिखित श्लोक देखिए— **अन्तः शून्यो बहिः शून्यः, शून्यः 'कुम्भ' इवाम्बरे।**
अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णः, 'पूर्ण - कुम्भ' इवार्णवे॥

अर्थात् जिस प्रकार एक खाली 'कुम्भ' अवकाश में पड़ा हो, तो उसके भीतर तथा बाहर सर्वत्र आकाश ही रहता है तथा जल से भरा **'कुम्भ'** समुद्र में डूबा हो, तो उसके भीतर और बाहर सर्वत्र जल ही रहता है, उसी प्रकार इस जगत् में सर्वत्र तथा इसके बाहर भी सर्व-श्रेष्ठ **'आत्मा'** ही है।

स्पष्ट है कि **'कुम्भ'-पर्व— आत्मा, आत्म-ज्ञान** जैसी सर्व-श्रेष्ठ प्राप्ति से जुड़ा हुआ है। आवश्यकता है कि इसके विविध पक्षों पर **चिन्तन-मनन** किया जाए।

* * *

'कुम्भ'-पर्व और 'वेद'

'वेद' ही **'कुम्भ'-पर्व** के आधार हैं। निम्न-लिखित मन्त्र प्रमाण हैं। यथा —

(१) **जघानं वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पूरो अरदन्न सिन्धून्।**
विभेद गिरं नवमित्र 'कुम्भमा' गा इन्द्रो अकृणुत स्व युग्भिः।। (ऋग्वेद, १०।८६।७)

उक्त **'मन्त्र'** का भावानुवाद इस प्रकार है— "इन्द्र, सूर्य अथवा विद्युत् मेघ को मारता है। जिस प्रकार कुठार जङ्गलों को काटता है, उसी प्रकार वह मेघों की नगरियों को ध्वस्त करता है और नदियों को पानी से युक्त करता है। वह नए **'कुम्भ'** के समान मेघ का भेदन करता है और अपने सहयोगी मरुतों के साथ वर्षा जल को अभिमुख करता है।

'प्रयाग-कुम्भ-रहस्य'-पुस्तिका में उक्त मन्त्र का भावार्थ करते हुए कहा गया है—**"कुम्भ-पर्व में जानेवाला मनुष्य अपने पापों का प्रक्षालन स्वयं अपने में फल-रूप में प्राप्त होनेवाले दान-होमादि सत्कर्मों से काष्ठ काटनेवाले कुठारादि की तरह करता है। जिस प्रकार 'गङ्गा'-नदी अपने तटों को नष्ट करती हुई प्रवाहित होती है, उसी प्रकार 'कुम्भ'-पर्व में मनुष्य अपने पूर्व-सञ्चित कर्मों से प्राप्त हुए शारीरिक पापों को नष्ट करता है और नूतन पर्वत की तरह पाप-रूपी बादलों को नष्ट-भ्रष्ट कर सु-वृष्टि-रूपी अमृत प्रदान करता है।"**

(२) **'कुम्भो' वानेष्ठुर्जनिता शचोभिर्यास्मित्रग्रे योन्यां गर्भोऽनन्तः।**
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्पत्ते दुहे च कुम्भी स्वधा पितृभ्यः।। (शुक्ल यजुर्वेद, १६/८७)

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा इसका अर्थ इस प्रकार दिया गया है— **"कुम्भ-पर्व सत्कर्म के द्वारा मनुष्य को इह-लोक में शारीरिक सुख देनेवाला और जन्मान्तरों में उत्कृष्ट सुखों का देनेवाला है।"**

(३) **पूर्णः 'कुम्भोऽधिकाल' आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।**
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन्।। (अथर्व-वेद, १६/५३/३)

उक्त **'मन्त्र'** का **'सायण-भाष्य'** के आधार पर भावानुवाद इस प्रकार है—

"जगत् के कारण-भूत नित्य अनवच्छिन्न परमात्मा—दिन-रात-माह-वर्ष-ऋतु आदि 'काल'-रूप से 'पूर्ण कुम्भ' के समान व्याप्त है। दिन-रात्रि आदि के भेद से हम उसे अनेक प्रकार का अनुभव करते हैं। अथवा **बहुत प्रकार के श्रवण-मनन से हम उसका साक्षात्कार करते हैं। वह भी 'अनुभव-श्रवण-मनन' करते हुए प्राणियों को अभिमुख होकर व्याप्त कर लेता है। विद्वान् पुरुष उसको सांसारिक सुख-दुःखादि से शून्य, आकाश के समान निर्लेप, अनेक प्रकार से रक्षक, परमानन्द-दायक-स्वरूप में वर्तमान् बताते हैं।**

(४) **चतुरः 'कुम्भाश्चतुर्धा' क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।**
एतास्त्वाधारा उपयन्तुः सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना,
उपत्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः।। (अथर्व-वेद, ४/३४/७)

अर्थात् **क्षीर आदि द्रव्यों से पूर्ण चार कुम्भों को मैं पूर्व आदि चार दिशाओं में चार स्थानों पर स्थापित करता हूँ। पुण्य के फल-स्वरूप ये स्वर्ग-लोक की 'क्षीर' आदि धाराएँ तुझको मधुरता को पुष्ट करती हुई प्राप्त हों और अन्त तक तुझको पूर्ण पुष्प-करिणियाँ प्राप्त हों।**

* * *

'कुम्भ'-पर्व की पौराणिक धारणा

वेदों में **'कुम्भ'-पर्व** का आधार कुछ सूत्रों-मन्त्रों में वर्णित है। पुराणों में विस्तृत वर्णन के दृष्टि-कोण से **'कुम्भ'-पर्व** मनाने के सम्बन्ध में सूत्रों-मन्त्रों के स्थान पर तीन कथाओं का उल्लेख मिलता है। ये तीनों कथाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) **महर्षि दुर्वासा की कथा—** यह कथा **'इन्द्र'** से सम्बन्धित है, जिसमें ऋषि दुर्वासा द्वारा दी गई दिव्य माला का **'इन्द्र'** द्वारा अपमान होता है। ऋषि दुर्वासा द्वारा दी गई माला को **'इन्द्र'— 'ऐरावत'** के मस्तक पर रख देते हैं और **'ऐरावत'** इस माला को भूमि पर गिराकर पैरों से कुचल देता है। **'माला'** के कुचले जाने पर ऋषि दुर्वासा **'इन्द्र'** को शाप देते हैं, जिससे सारे संसार में हाहाकार मच जाता है। **'अनावृष्टि'** और **'दुर्भिक्ष'** से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठती है। नारायण की कृपा से **'समुद्र-मन्थन'** की प्रक्रिया द्वारा **'भगवती लक्ष्मी का प्राकट्य'** होता है, जिससे पुनः वृष्टि होने लगती है। फिर **'अमृत'** का प्राकट्य होता है। अमृत-पान से वञ्चित असुर-गण **'अमृत-कुम्भ'** को नाग-लोक में छिपा देते हैं, जहाँ से गरुड़ उसका उद्धार करते हैं। **'क्षीर-सागर'** पहुँचने से पूर्व गरुड़ जिन स्थानों पर **'अमृत-कुम्भ'** रखते हैं, वहीं आज **'कुम्भ-पर्व'** मनाया जाता है।

(२) **कद्रू-विनता की कथा—** यह कथा प्रजापति कश्यप की दो पत्नियों **'कद्रू'** और **'विनता'** के परस्पर विवाद से सम्बन्धित है। प्रजापति कश्यप की दोनों पत्नियों के बीच इस बात पर विवाद होता है कि **'सूर्य के अश्व काले हैं या सफेद?'** इस विवाद में यह शर्त थी कि जिसकी बात झूठी सिद्ध होगी, वह दासी बन जाएगी। **'कद्रू'** के पुत्र थे— **'नागराज वासुकि'** और **'विनता'** के पुत्र थे— **'वैनतेय गरुड़।' 'कद्रू'** ने अपने नाग-वंश को प्रेरित करके उनके कालेपन से सूर्य के अश्वों को ढँक दिया, जिससे विनता हार गई। अपने को दासी के रूप से छुड़ाने के लिए **'विनता'** ने अपने पुत्र **'गरुड़'** से कहा। **'गरुड़'** ने इसके लिए **'कद्रू'** से पूछा, तो **'कद्रू'** ने दासी-रूप से छोड़ने के लिए यह शर्त रखी कि 'नाग-लोक से वासुकि नाग द्वारा रक्षित **'अमृत-कुम्भ'** जब कोई ले आएगा, तब मैं विनता को दासत्व से मुक्त कर दूँगी।' गरुड़ **'अमृत-कुम्भ'** को लेने जाते हैं। **'अमृत-कुम्भ'** को लेकर वे भू-लोक होते हुए, कश्यप मुनि के गन्ध-मादन पर्वत पर स्थित आश्रम की ओर जाते हैं। वासुकि **'अमृत-कुम्भ'** ले जाने की सूचना इन्द्र को देते हैं। इन्द्र गरुड़ पर चार बार आक्रमण करते हैं। इन्द्र के द्वारा आक्रमण होने पर चार प्रसिद्ध स्थानों पर **'कुम्भ'** का **'अमृत'** छलकता है, जिससे चार स्थानों पर **'कुम्भ-पर्व'** की धारणा उत्पन्न हुई।

(३) **समुद्र-मन्थन की कथा—** तीसरी कथा **'समुद्र-मन्थन'** की है, जो आज सबसे अधिक प्रचलित है। इस कथा के अनुसार उत्तर दिशा में **'हिमालय'** के समीप **'क्षीरोद'** नाम का एक सागर है। उस सागर को एक समय देवता और दानवों ने मूल में **'कूर्म'** और उसके ऊपर

भगवान् विष्णु की बाहु में **'मन्दराचल'**-पर्वत को स्थापित करके मथना प्रारम्भ किया। **'मन्दराचल'**-पर्वत को मथानी और **'वासुकि'**-नाग को नेती (मथानी में लगनेवाली रस्सी) बनाया गया। **'क्षीरोद'**-सागर के मन्थन से पहले हलाहल **'विष'** उत्पन्न हुआ, जिसे भगवान् शिव ने पी लिया। हलाहल विष की ज्वालाओं के शान्त होने पर समस्त संसार स्वस्थ हो गया और देवता तथा दानवों ने पुनः **'समुद्र-मन्थन'** का कार्य प्रारम्भ किया। इस पुनः मन्थन से २ **पुष्पक विमान, ३ ऐरावत-हाथी, ४ पारिजात वृक्ष, ५ नृत्य-कला में प्रवीण रम्भा, ६ कौस्तुभ-मणि, ७ द्वितीया का बाल चन्द्रमा, ८ कुण्डल, ९ शार्ङ्ग धनुष, १० पञ्च कल्याणी सुरभि गाय, ११ उच्चैश्रवा घोड़ा, १२ समस्त ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री लक्ष्मी, १३ देवताओं के वैद्य धन्वन्तरि, १४ समस्त कलाओं में विशारद देव-शिल्पी विश्वकर्मा** उत्पन्न हुए। महा-विष्णु धन्वन्तरि के हाथों में शोभायमान **'कुम्भ'** उत्पन्न हुआ, जो मुख तक **'अमृत'** से पूर्णतया भरा हुआ और सब लोगों के मन को आकर्षित करनेवाला था। भगवान् विष्णु की कृपा से वह **'अमृत-कुम्भ'**— इन्द्र को प्राप्त हुआ। फिर देवताओं के सङ्केत से इन्द्र के पुत्र जयन्त **'अमृत-कुम्भ'** को लेकर चल पड़े। तब दैत्यों के पुरोहित शुक्र ने वासुकि नाग के उच्छ्वासों से पीड़ित दैत्यों को इसकी सूचना दी। दैत्य-गण जयन्त का पीछा करने लगे। जयन्त भयभीत होकर दशों दिशाओं में बारह दिन तक रात-दिन भागते हुए बहुत दुःखी हुआ। जयन्त के हाथ से **'अमृत-कुम्भ'** को दैत्यों ने छीन लिया, पुनः जयन्त ने उसको दैत्यों से छीन लिया। 'मैं पहले पिऊँगा, तुम नहीं'— ऐसा कहते हुए वे दैत्य बड़े क्रोधित होकर युद्ध करने लगे।

'अमृत' के लिए देवताओं और दैत्यों में झगड़ा होने पर भगवान् ने दैत्यों को मोहित करके, **'मोहिनी'**-अवतार लेकर 'अमृत' को देवताओं में बाँट दिया और दैत्य-दानव **'अमृत'** से वञ्चित रह गए। देवता एवं दानवों के विवाद में पृथ्वी **के जिस-जिस स्थान में जिस-जिस समय 'कुम्भ' से अमृत गिरा था, उस-उस समय उस-उस स्थान का 'कुम्भ'-पर्व मनाया जाता है।**

दैत्यों ने **'अमृत-कुम्भ'** की रक्षा में **बृहस्पति, चन्द्रमा, शनि** और **सूर्य** ने सहायता की थी। **चन्द्रमा** ने **'अमृत'** को **'कुम्भ'** से गिरने से, **सूर्य** ने **'कुम्भ'** को फूटने से, **बृहस्पति** ने दैत्यों द्वारा **'अमृत'** के अपहृत होने से और शनि ने देवराज इन्द्र के भय से **'अमृत-कुम्भ'** की रक्षा की थी।

'अमृत-कुम्भ' की रक्षा करते समय **सूर्य-चन्द्रमा** और **बृहस्पति** जिन राशियों में स्थित थे, उन्हीं राशियों में उनका पुनः संयोग होने पर, जो भूमि **'कुम्भ'**— के अमृत से आप्लावित हुई थी, उसी भूमि में **'कुम्भ'-पर्व** मनाया जाता है।

'अमृत'-प्राप्ति के लिए देवताओं और दानवों में देवताओं की गणना से १२ दिन तक युद्ध हुआ। मनुष्यों की गणना में, देवताओं के १२ दिन १२ वर्ष के बराबर हैं। इसीलिए **'कुम्भ'-पर्व बारह की संख्या** में होते हैं। **बारह कुम्भ-पर्वों** में से **चार 'कुम्भ'-पर्व** मनुष्यों को कर्म-बन्धनों से मुक्त करने के लिए पृथ्वी पर **भारत-वर्ष** में होते हैं। शेष **आठ 'कुम्भ'-पर्व**

दूसरे लोकों में होते हैं, जिन्हें देवता ही जानते हैं, दूसरे नहीं।

जो मनुष्य **'कुम्भ'-पर्व** के योग में सम्मिलित होते हैं, वे **'अमृत'-तत्त्व** को प्राप्त करते हैं अर्थात् कर्म-बन्धनों से वे मुक्त हो जाते हैं।

'कालिका-पुराण' में 'कुम्भ' की उत्पत्ति का विशेष वर्णन

'कालिका-पुराण', पुष्याभिषेक, अध्याय ८७ में **'समुद्र'-मन्थन** के सन्दर्भ में **'कुम्भ', 'कलश'** अथवा **'कलस'** या **'घट' की उत्पत्ति** और **माहात्म्य** के सम्बन्ध में बहुत ही स्पष्ट वर्णन है। यथा— "हे राजन्, देवता और असुरों द्वारा **'अमृत'** के लिए जब **'समुद्र-मन्थन'** हो रहा था, तो **'अमृत'** के धारणार्थ **विश्वकर्मा** ने **'कलश'** का निर्माण किया। यह देवताओं की पृथक्-पृथक् कलाओं को एकत्र करके बना था, इसलिए **'कलश'—'कलस'** कहलाया। **नव कलश** हैं, जिनके नाम हैं —**१ गोह्य, २ उप-गोह्य, ३ मरुत्, ४ मयूख, ५ मनोहा, ६ कृषि-भद्र, ७ तनु-शोधक, ८ इन्द्रियघ्न** और **६ विजय।**

हे राजन्, उक्त **नौ कलशों** के क्रमशः **नौ नाम** और हैं उनको सुनो, जो सदैव शान्ति देनेवाले हैं। पहला—**'क्षितीन्द्र'**, दूसरा— **'जल-सम्भव'**, तीसरा—**'पवन'**, चौथा—**'अग्नि'**, पाँचवाँ— **'यजमान'**, छठा—**'कोश-सम्भव'**, सातवाँ—**'सोम'**, आठवाँ—**'आदित्य'** और नवाँ —**'विजय'।**

'कलश'—'पञ्च'-मुख है। वह **महा-देव के स्वरूप** को धारण करनेवाला है। **'कलश'** के पाँच मुखों में **पञ्चानन महा-देव** स्वयं निवास करते हैं, इसलिए सम्यक् प्रकार से **'वामदेव'** आदि नामों से **'पञ्च-वक्त्र-घट'** का **'न्यास'** करना चाहिए। **१ 'क्षितीन्द्र'** को पूर्व में, **२ 'जल-सम्भव'** को पश्चिम में, **३ 'पवन'** को वायव्य में, **४ अग्नि-सम्भव** को अग्नि-कोण में, **५ 'यजमान'** को नैर्ऋत्य में, **६ 'कोश-सम्भव'** को ईशान में, **७ 'सोम'** को उत्तर में और **८ 'आदित्य'** को दक्षिण में रखना चाहिए।

'कलश' के मुख में **'विष्णु'** और ग्रीवा में **'शङ्कर'** स्थित हैं। मूल में **'ब्रह्मा'** और मध्य में **'मातृ-गण'** का निवास है। **दिक्-पाल देवता** दसों दिशाओं से इसका मध्य में वेष्ठन करते हैं और उदर में **सप्त-सागर** तथा **सप्त-द्वीप** स्थित हैं। **नक्षत्र, ग्रह,** सभी **कुल-पर्वत, गङ्गा** आदि नदियाँ, **चार वेद** —सभी **'कलश'** में स्थित हैं। **'कलश' में इनका चिन्तन** करना चाहिए।

रत्न, सभी बीज, पुष्प, फल, वज्र, मौक्तिक, वैदूर्य, महा-पद्म, इन्द्र-स्फटिक, बिल्व, नागर, उदुम्बर, बीज-पूरक, जम्बीर, आम्र, आम्लातक, दाडिम, यव, शालि, नीवार, गोधूम, सित, सर्षप (श्वेत सरसों), कुंकुम, अगुरु, कर्पूर, मदन, रोचन, चन्दन आदि शुभ वस्तुओं को लाकर **'कलश' में निधापन** करना चाहिए।

'कलश' के देवता— **विधि (ब्रह्मा), शम्भु, गदाधर (विष्णु)** का यथा-क्रम पूजन करना चाहिए। विशेष करके **शम्भु** का। इसके पश्चात् नाना-विधि से **दिक्-पालों का पूजन** करना चाहिए। फिर **नव-ग्रहों** की और **मातृकाओं की पूजा** करनी चाहिए। **'घट'** में उक्त सभी देवताओं की पृथक्-पृथक् पूजा होती है। मुख्यतया पूर्वोक्त नव देवताओं की।"

* * *

'कुम्भ'-पर्व एवं 'समुद्र-मन्थन'-कथा

'कुम्भ'-पर्व के सम्बन्ध में पुराणों की **'समुद्र-मन्थन'-कथा** बहुत लोक-प्रिय है। हमारे यहाँ प्रायः बच्चा-बच्चा इस कथा से परिचित है। पुराणों की यह कथा **'वेदों'** पर ही आधारित है।

पहले **'मन्थन'-विद्या** पर ही विचार करें। **पुराणों** ने किसी **नई विद्या का प्रचार** नहीं किया है। **'बृहदारण्यक उपनिषद्'** स्पष्ट शब्दों में कहता है, जिसे **'धन-ऐश्वर्य-पुत्र'**-आदि महत्त्व चाहिए, उसे **'मन्थन'-कर्म** करना चाहिए। **आदि शङ्कराचार्य** जी इस **'बृहदारण्यक उपनिषद्'** के भाष्य में लिखते हैं—**'मन्थाख्यं कर्मारभ्यते महत्त्व-प्राप्तये, महत्त्वे च सत्यर्थ-सिद्धं हि वित्तम्।'** अर्थात् **महत्त्व-प्राप्ति के लिए 'मन्थ'-संज्ञक कर्म किया जाता है।** महत्त्व होने पर तो **वित्त** स्वतः सिद्ध होता है।

यही नहीं, उक्त उपनिषद् में **'मन्थन' का काल** भी बताया गया है। यथा—**'मन्थ-कर्मणो विधित्सितस्य कालोऽभिधीयते-उदगयनम् आदित्यस्य, तत्र सर्वत्र प्राप्तावापूर्यमाण-पक्षस्य शुक्ल-पक्षस्य....'** अर्थात् आदित्य (सूर्य) के **उदगयन—उत्तरायण** में होने पर **शुक्ल-पक्ष** में, जब सभी कुछ की प्राप्ति होती है। ध्यान दीजिए— यह वही काल है, जब **'प्रयाग' में 'कुम्भ'-पर्व का आयोजन** होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि **वेदों की 'मन्थन'-विद्या** को ही **पुराणों** ने **'समुद्र-मन्थन'-कथा** के रूप में वर्णित किया है, जो आज भी प्रचलित है।

अब थोड़ा **'समुद्र'** पर भी विचार करें। **पुराणों** ने **'समुद्र'-मन्थन** की जो कथा कही है, वह मनोरञ्जन-मात्र नहीं है। इसके पीछे गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं। वास्तव में इसके द्वारा **पुराणों** ने **'वेदों की मन्थन-विद्या'** को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

'समुद्र'-मन्थन की कथा के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि **पुराणों** में जिन्होंने इसकी रचना की है, वे **'समुद्र'** या **'सागर'** के 'बाह्य' व 'आन्तरिक'— दोनों स्वरूपों से भली-भाँति परिचित थे और उन्होंने तभी ऐसी **'सुन्दर कथा' का चित्रण** किया, जो आज हजारों वर्षों बाद भी सुनी-सुनाई जाती है। यदि यह कथा **कोरी कल्पना** होती, तो न जाने कब यह विस्मृत हो चुकी होती।

'समुद्र' या **'सागर'** के भीतर मानव जाति के लिए किस प्रकार के व कितने **'रत्न-औषधि'** छिपे हैं, यह आज के **'समुद्र-विज्ञान'** की खोजों से स्पष्ट हो रहा है। आधुनिक वैज्ञानिकों का आकलन है कि जब **सन् २०४० में २१वीं सदी के मध्य में तेल, कोयले, प्राकृतिक गैस के भण्डार** समाप्त हो जाएँगे, तब **'समुद्र'** की तलहटी में भारी मात्रा में विद्यमान अनछुए ईंधन से ही कार्य होगा। यही नहीं, **'समुद्र'** की गहराइयों से ऐसे रसायनों की पहचान हो रही है, जिनसे **'जीवन-दायक विलक्षण औषधियों का निर्माण'** होगा।

आधुनिक वैज्ञानिक पुराणों की भाषा में अब यह भी स्वीकार कर रहे हैं कि जीवन के

पहले चरण का प्रारम्भ **पृथ्वी** के स्थलीय क्षेत्र में नहीं, अपितु **'सागर'** के गहरे जल में हुआ है। इस प्रकार हम आधुनिक अनुसन्धानों द्वारा देखते हैं कि **पुराणों की 'समुद्र-मन्थन' की कथा अपने बाह्य स्थूल अर्थों में भी पूरी तरह सत्य** सिद्ध हो रही है। **भारतीय गैस प्राधिकरण** और **अमेरिका की नौसैनिक अनुसन्धान प्रयोग-शाला** मिल-जुलकर ऐसे अनुसन्धान-कार्य में लगे हैं, जिनसे विश्व का बहुत कल्याण होगा।

विचार करें, जब **'समुद्र'-मन्थन की बाह्य स्थूल बातें** पूरे मानव-समाज के लिए अत्यधिक उपादेय सिद्ध हो रही हैं, तो **'समुद्र'-मन्थन की आन्तरिक सूक्ष्म बातें** कितनी अधिक उपादेय— कल्याणकारी, नहीं-नहीं **'अमृत'-स्वरूपा** होंगी! आन्तरिक सूक्ष्म भावों के सन्दर्भ में **'समुद्र-मन्थन'** का अर्थ **'आत्म-मन्थन'** है। **मीमांसा-कार जैमिनि** कहते हैं—**'पुरुषो वै समुद्रः।'** अर्थात् **'पुरुष'** ही **'समुद्र'** है। **'तैत्तरीय श्रुति'** कहती है—**'समुद्र इव हि कामः, काम-मय एवायं पुरुषः।'** अर्थात् **मानव की कामनाएँ ही 'समुद्र'** है। मनुष्य यदि **'कामना'-रूपी समुद्र** को मथ डाले, तो उससे **अमृत-कलश-धारिणी श्री** क्या— **साक्षात् 'अमृत'** भी प्राप्त कर सकता है, जो कभी नष्ट नहीं होता।

'मुमुक्षु मार्ग'-नामक पुस्तक में **गुप्तावतार बाबाश्री** प्रसिद्ध **नवार्ण-मन्त्र** के सम्बन्ध में **नव अर्णव = नौ समुद्रों** के बारे में बताते हैं। वे कहते हैं कि **'नौ समुद्र'** इस प्रकार हैं— **१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मत्सर, ७ ईर्ष्या, ८ द्वेष, ९ सागर। ९वाँ 'सागर' इन आठ सागरों की शृङ्खला के दोनों छोरों को मिलानेवाला फन्दा है।** ये **नवों समुद्र** ऐसे हैं कि यदि मानव इनको मथ डाले, तो उससे **श्री, ऐश्वर्य, आत्म-ज्ञान-रूपी मोक्ष**—सभी कुछ प्राप्त कर सकता है।

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी मानव-समाज का पथ-प्रदर्शन करते हुए कहते हैं—

'रूप-सागरे डुब दियेछि, अरूप-रतन आशा करि,
घाटे-घाटे घुरब ना आर भासिये आमार जीर्ण तरी।'

हिन्दी भाषा में **'देवर्षि' ठाकुर** के उक्त भावों को गुनिए, बहुत कुछ स्पष्ट हो जाएगा—

'रूप'-सागर में डुबकी लगाकर आशा है पा जाऊँगा मैं **अरूप-रतन।**
अब और नहीं फिरूँगा मैं घाट-घाट लेकर अपनी यह पुरानी नाव!!
लगता है, लहरों के थपेड़े खाते फिरने के दिन बीत गए।
इस बार **'सुधा'** पाने के लिए **तल में पैठूँगा,**
और **'अमर'** हो रहूँगा, **मर कर!!**

पुराणों ने **'समुद्र-मन्थन'** के लिए **'सुर'** और **'असुर'** दोनों को खड़ा किया है। यह बात उन लोगों को कुछ अजीब-सी दिखती है, जो **'असुर'—'सुर'** को **'विलेन'—'हीरो'**-जैसी

बँधी-बँधाई छवि में देखते हैं। इसमें दोष इस प्रकार देखने-सोचनेवालों का ही है, **'पुराणों'** का नहीं। **'पुराण'** जो कुछ वर्णन करते हैं, वह सब **वेदों, उपनिषदों के ज्ञान-विज्ञान** पर आधारित है। वे मनमाने ढङ्ग से वर्णन नहीं करते।

पुराणों के अनुसार **'असुर—सुर'** भाई-भाई हैं। **'असुर'** बड़े हैं, **'सुर'** छोटे। **असुरों** की माता— **'दिति'** हैं एवं **सुरों** की **'अदिति'**। दोनों के पिता **ब्रह्मा के पौत्र 'ऋषि कश्यप'** हैं। इन लोगों का रहस्य हमें तब ज्ञात होता है, जब हम **'दिति', 'अदिति', 'कश्यप ऋषि'** आदि नामों पर **चिन्तन-मनन** करते हैं। बहुत **चिन्तन-मनन** न करना हो, तो **आदि शङ्कराचार्य** के भाष्य को ही देख लीजिए। वे स्पष्ट शब्दों में बताते हैं कि **'असुर'** कौन है? और **'सुर'** कौन? देखिए—

'देवा दीव्यते द्येति-नार्थस्य शास्त्रोद्-भासित इन्द्रिय-वृत्तयः, असुरास्तद् विपरीताः संग्राम कृत्वन्तः। शास्त्रीय-प्रकाश-वृत्त्यभिभावनाय प्रवृत्ताः, स्वाभाविक्यस्तमो-रूपा इन्द्रिय-वृत्तयोऽसुरः।...'

अर्थात् **'देवता'—चैतन्य-वृत्तियाँ** हैं और **'असुर'—परिच्छिन्न-कारक वृत्तियाँ।**

अब चूँकि सामान्यतः मानव-शरीर में **चेतना को ढँकनेवाली परिच्छिन्न-कारक वृत्तियाँ** पहले उदित होती हैं तथा फिर **चैतन्य वृत्तियाँ** उभरती हैं। अतः पहले को **बड़ा भाई** व दूसरे को **छोटा भाई** कहा जाता है। यही नहीं, चूँकि उक्त दोनों वृत्तियाँ **'दिति'** और **'अदिति'** नामक भिन्न-भिन्न सर्गों से उदित होती हैं, अतः ये इनकी जननी कहलाती हैं।

ऋषि कश्यप—असुर, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी जीव-धारी प्राणि-मात्र के जनक हैं, जो सर्वथा उचित है। आप ही से सृष्टि में ऐसे जीव-धारियों का प्रादुर्भाव होता है, जिनमें **चैतन्य-परिच्छिन्न-कारक** व **चैतन्य—दोनों वृत्तियाँ** होती हैं। आपके द्वारा ही **सृष्टि के विस्तार में नई सम्भावनाओं का जन्म** होता है। इसीलिए आपको **'प्रजा-पति'** कहा गया है।

संक्षेप में, **'मन्थन'-विद्या, बाह्य स्थूल 'समुद्र'-ज्ञान, आन्तरिक सूक्ष्म 'समुद्र'-विज्ञान, 'असुर-सुर'** आदि— इन सबको जानने-पहचानने पर **पुराणों की पूरी योजना** स्पष्ट होती है। **'पुराण' पूरी तरह सत्य** सिद्ध होते हैं। **शारीरिक नीरोगता, लक्ष्य-प्रदात्री 'लक्ष्मी', कभी न नष्ट होनेवाला 'अमृत'** यदि हमें प्राप्त करना है, तो सभी कामनाओं को मथना होगा। मथने के लिए चैतन्य-रूपा **'बुद्धि'** व चैतन्यता को ढँकनेवाले **'मन'**— दोनों को लगाना होगा। इस प्रकार **'मन्थन'** से मन को हरनेवाले मनोहर रत्नों की प्राप्ति तो होगी ही, साथ ही **'आत्मा'** अर्थात् **'कुम्भ'** को दीप्ति करनेवाली शक्ति— **'अमृत'** की भी प्राप्ति होगी।

'कुम्भकावस्था'

'कुम्भकावस्था' वह अवस्था है, जब श्वास नहीं लिया जाता है और न फेंका ही जाता है। यह **'प्राणायाम'**-प्रक्रिया का मुख्य अङ्ग है। इससे **'प्राण-शक्ति'** का सम्वर्धन होता है और **'विकार'**-रूपी **'असुर'**-समूह नष्ट होते हैं।

'संसार'-रूपी घोर समुद्र का परिचय

आन्तरिक सूक्ष्म भावों के सन्दर्भ में पिछले पृष्ठों में **अन्तः-स्थित 'समुद्र' की चर्चा** हुई है। यहाँ **'महा-भारत', शान्ति-पर्व, ३०१/६४-७२** के आधार पर **'संसार'-रूपी घोर समुद्र का परिचय** प्रस्तुत है। आशा है कि **'समुद्र-मन्थन' के पीछे छिपे भावों का स्पष्टीकरण** इसके द्वारा सहज ही हो सकेगा। यथा—

ततो दुःखोदकं घोरं, चिन्ता-शोक-महा-ह्रदम्। व्याधि-मृत्यु-महा-ग्राहं, महा-भय-महोरगम्।।

तमः कूर्मं रजो मीनं, प्रज्ञया सन्तरन्त्युत। स्नेह - पङ्कं जरा-दुर्गं, ज्ञान-द्वीपमरिन्दम।।

कर्मागाधं सत्य-तीरं, स्थित-व्रतमरिन्दम। हिंसा शीघ्र-महा-वेगं, नाना-रस-समाकरम्।।

नाना-प्रीति-महा-रत्नं, दुःख-ज्वर-समीरणम्। शोक-तृष्णा-महावर्तं, तीक्ष्ण-व्याधि-महा-गजम्।।

अस्थि-सङ्घात-सङ्घट्टं, श्लेष्म - फेनमरिन्दम। दान-मुक्ताकरं घोरं, शोणित-ह्रद-विद्रुमम्।।

हसितोत्क्रुष्ट - निर्घोषं, नाना-ज्ञान-सुदुस्तरम्। रोदनाश्रु-मल-क्षारं, सङ्ग-त्याग-परायणम्।।

पुत्र-दार-जलौकौघं, मित्र-बान्धव-पत्तनम्। अहिंसा-सत्य-मर्यादं, प्राण-त्याग-महोर्मिणम्।।

वेदान्त - गमन - द्वीपं, सर्व-भूत-दयोदधिम्। मोक्ष-दुर्लभ-विषयं, वडवा-मुख-सागरम्।।

तरन्ति यतयः सिद्धा, ज्ञान-यानेन भारत! तीर्त्वाति-दुस्तरं जन्म, विशन्ति विमलं नभः।।

अर्थात् **'संसार'-रूपी समुद्र** में **'दुःख'**-रूपी जल भरा है, **'चिन्ता'** और **'शोक'** के बड़े-बड़े कुण्ड हैं। अनेक प्रकार के **'रोग'** और **'मृत्यु'**—विशाल ग्राहों के समान हैं। **'महान् भय'** ही महा-नागों के समान है। **'तमो-गुण'**— कछुए और **'रजो-गुण'**—मछलियाँ हैं। **'स्नेह'** ही कीचड़ है। **'वृद्ध-अवस्था'** ही उसमें पार होने में कठिनाई है। **'ज्ञान'** ही उसका द्वीप है। अनेक प्रकार के **'कर्मों'** द्वारा वह अगाध बना हुआ है। **'सत्य'** ही उसका तीर है। **'नियम-व्रत'** आदि स्थिरता है। **'हिंसा'** ही उसका शीघ्र-गामी महान् वेग है। वह अनेक प्रकार के **रसों** का भण्डार है। अनेक प्रकार की **'प्रीतियाँ'** ही उस भव-सागर के महा-रत्न हैं। **'दुःख'** और **'सन्ताप'** ही समुद्र के ऊपर बहनेवाली वायु है। **'शोक'** और **'तृष्णा'** की उसमें बड़ी-बड़ी भँवरें उठती रहती हैं। **'तीव्र व्याधियाँ'** उसके भीतर रहनेवाली महान् जल-हस्ती हैं। **'हड्डियाँ'** ही उसके घाट हैं। **'कफ'**—फेन है, **'दान'**—उसमें स्थित मोतियों की राशि है। **'रक्त'** उसके कुण्ड में रहनेवाला मूँगा है। **'हँसना'** और **'चिल्लाना'** ही उस सागर की गम्भीर गर्जना है। अनेक प्रकार के **'अज्ञान'** ही उसे अत्यन्त दुस्तर बनाए हुए हैं। **'रोदन-जनित आँसू'** ही उसमें मलिन खारे जल के समान हैं। **'आसक्तियों का त्याग'** ही उसका परम आश्रय या दूसरा तट है। **'स्त्री-पुत्र'**—जोंक के समान हैं। **'मित्र और बन्धु-बान्धव'**— तट-वर्त्ती नगर हैं। **'अहिंसा'** और **'सत्य'** ही उसकी सीमा हैं। **'प्राणों का परित्याग'** ही उसकी उत्ताल तरङ्गें हैं। **'वेदान्त-ज्ञान'**—द्वीप हैं। समस्त प्राणियों के प्रति **'दया'-भाव** इसकी जल-राशि है। **'मोक्ष'** उसमें दुर्लभ विषय है। अनेक प्रकार के **'सन्ताप'** उसके बड़वानल हैं। **'ज्ञान'**-रूपी नौका द्वारा सिद्ध लोग इससे तर जाते हैं। इससे पार होकर वे आकाश-स्वरूप **निर्मल—पर-ब्रह्म** में प्रवेश कर जाते हैं।

* * *

'कुम्भ'-पर्व का लक्ष्य—'अमृत'

'कुम्भ'-पर्व का लक्ष्य **'समुद्र'-मन्थन—'आत्म-मन्थन'** द्वारा **'अमृत की प्राप्ति'** है। प्रश्न यह उठता है कि **'आत्म-मन्थन'** किस प्रकार हो? क्या **'आत्म-मन्थन'** के लिए **घर-संसार आदि छोड़ना** आवश्यक है? इस सन्दर्भ में **'ईशावास्योपनिषद्'** कहता है कि—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्, वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा, विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

अर्थात् **'विद्या'** और **'अविद्या'**—इन दोनों के साथ जो **'आत्म-तत्त्व'** को जानता है, वही **'अविद्या'** से **मृत्यु** (निष्क्रियता) को जीतकर, **'विद्या'** से **'अमृत'** (सर्व-कल्याण) को प्राप्त करता है।

साथ-ही-साथ **'ईशावास्योपनिषद्'** यह भी कहता है कि—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।।

अर्थात् जो (केवल) **'अविद्या'** के उपासक हैं, वे घोर अन्धकार में चले जाते हैं और जो (केवल) **'विद्या'** में रम गए हैं, वे उससे भी अधिक घोर अन्धकार में पहुँच जाते हैं।

इस प्रकार **सर्व-कल्याण-रूपी 'अमृत' की प्राप्ति** तभी सम्भव है, जब हम **'अविद्या'** (बाह्य कर्म-काण्ड) और **'विद्या'** (सूक्ष्म ज्ञान)—इन दोनों के समुच्चय के साथ जीवन-यापन करते हैं। केवल **'अविद्या'** (बाह्य कर्म-कौशल) अथवा केवल **'विद्या'** (अन्तः-ज्ञान) से हमें **'सर्व-कल्याण की प्राप्ति'** नहीं हो सकती। यदि हम केवल **'बाह्य कर्म-कौशल'** पर ध्यान देंगे, तो **'अन्तः-ज्ञान'** की कमी से वह अच्छे फल देने के स्थान पर संहारक हो जाएगा और यदि केवल **'अन्तः-ज्ञान'** पर ध्यान देंगे, तो **'बाह्य कर्म-कौशल'** की कमी से वह किसी काम का न रह जाएगा।

गुप्तावतार बाबाश्री के शब्दों में कहें, तो सच्ची बात यह है कि **''जीवन सार-ग्राही''** है। जीवन —**''सार (विद्या)** और **असार (अविद्या)** में ही मिलता है।'' अथवा, **''जीवन शोध-प्रधान** है। शोध करते-करते कौन-सी वस्तु कहाँ, कब व कैसे मिलेगी? यह उसका **'अविद्याङ्ग'** है और हमें वह वस्तु किसलिए मिली? या उसका क्या रहस्य है? यह उसका **'विद्याङ्ग'** है। इन दोनों के साथ-साथ होने पर ही **सच्चे जीवन की प्राप्ति** होती है।''

अथवा, **''सच्चा जीवन—'युद्ध'** व **'शोध'** में है। **'युद्ध' 'अविद्याङ्ग'** है और **'शोध' 'विद्याङ्ग'** है। **'युद्ध'** और **'शोध'** में अपना उपयोग **'अन्यार्थ-विभूति-रूप'** अर्थात् **'प्रभु की मर्जी'** से होता है। मूल बात यह है कि **आवश्यकता-पूर्त्ति-रूपी 'युद्ध'** में लगा रहा जाए और उसमें **प्रभु की मर्जी का 'शोध'** भी होता रहे। इसी से **'मृत्यु' को जीतकर 'अमरता' की प्राप्ति** होती है।

'अमरता'— 'आत्मा'-रूपी 'कुम्भ' की पूर्णता है। इसे हमारे यहाँ ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले न केवल जान लिया था, अपितु विविध प्रकार से उसे समझा-समझाया भी था।

उदाहरण के रूप में **'अथर्व-वेद', १७-२-१९** का एक मन्त्र देना चाहूँगा। इस मन्त्र के द्वारा सभी बातें भली-भाँति स्पष्ट होती हैं—

असति सत् प्रतिष्ठितम्, सति भूतं प्रतिष्ठितम्।

भूतं ह भव्ये आहितं, भव्यं भूते प्रतिष्ठितम्। तवेद विष्णो! बहुधा वीर्याणि।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्व - रूपैः, सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।

अर्थात् **'असत्'** में **'सत्'** की प्रतिष्ठा है। **'सत्'** में **'भूत'** की प्रतिष्ठा है। **'भूत वस्तु'—'भव्य' (भविष्य)** में आधारित है। **'भव्य'** अर्थात् भविष्य **'भूत'** में स्थित है। हे भगवान् विष्णो! आपका सामर्थ्य अनेक प्रकार से फैला हुआ है। आप हम सबकी रक्षा करिए। अनेक रूप से जीवनोपयोगी वस्तुओं को प्रदान कीजिए। परम व्योम से प्रवाहित **'सुधा'**-नामवाले **'अमृत'**-तत्त्व में मुझे रखिए।

'कुम्भ' को ध्यान में रखकर उक्त मन्त्र के भावार्थ का मनन करें। यथा—

(१) **'असत्'** में **'सत्'** की प्रतिष्ठा है। इसका भावार्थ यह है कि जिस प्रकार **'असत्य'** अर्थात् मिट्टी से बने **'कुम्भ'— 'कलश'— 'घट'** में **'सत्'** अर्थात् **जल की प्रतिष्ठा** होती है, उसी प्रकार **'आत्मा'** है।

(२) **'सत्'** में **'भूत'** की प्रतिष्ठा है। अर्थात् **'आत्मा'** में **'आत्म-ज्ञान'**-रूपी **'परमात्मा'** की प्रतिष्ठा है।

(३) **'भूत वस्तु'—'भव्य'** (भविष्य) में आधारित है। अर्थात् **'आत्म-ज्ञान'** का प्रगटीकरण भविष्य पर निर्भर है।

(४) **'भव्य'** अर्थात् भविष्य— **'भूत'** में स्थित है। अर्थात् **'आत्म-ज्ञान'—'परमात्मा'-रूपी सत् पदार्थ** में प्रतिष्ठित है।

(५) **हे भगवान् विष्णो!** आपका सामर्थ्य अनेक प्रकार से फैला है। आप हम सबकी रक्षा कीजिए। **परम व्योम** से प्रवाहित होनेवाले **'सुधा'**-नामवाले **'अमृत'-तत्त्व** में मुझे रखिए। अर्थात् **विष्णु-रूपी सत् पदार्थ** ही जगत् के सभी व्यवहारों में विद्यमान है। यही जगत् के स्थूल-सूक्ष्म सभी पदार्थों का नियामक है। नित्य जीवनोपयोगी पदार्थों का वही प्रदान करनेवाला है। सांसारिक सुख तृप्त नहीं कर सकते, अतः स्थायी सुख— आनन्द-रूप **'अमृत तत्त्व'** की प्राप्ति के लिए **'प्रार्थना'** करते हैं। **'अमृत'—परम व्योम में व्याप्त** है। **'कुम्भ'-रूपी जीवात्मा** में **'सहस्रार'** ही **'परम व्योम'** है। **'कुम्भी'—साधक** प्राण-अपान की एकता सम्पादन कर **परम व्योम (सहस्रार)** में स्थित **'अमृत' की प्राप्ति** करते हैं। यह **'अमृत'-प्राप्ति ही 'कुम्भी'—साधक का परम लक्ष्य** है, क्योंकि (अथर्व-वेद, १०-८-४४)—

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूः, रसेन तृप्तो न कुताश्चनोनः।

तमेव विद्वान् न विभाय, मृत्योः आत्मानं धीरमजरं युवानम्॥

अर्थात् कामनाओं को मथनेवाला—कामनाओं से रहित—**धीर-अमृत-स्वयम्भू-स्वरूप** होता हुआ—**ब्रह्म-रस से तृप्त** होकर—निश्चल जरा-व्याधि-रहित **सर्वदा युवा-रूपवाला** होकर मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है।

'कुम्भ'-पर्व के उक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए **विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर** भी कुछ ऐसा ही कहते हैं—

मन! जाग मङ्गल-लोके, अमल अमृत-मय नव आलोके, ज्योति-विभासित चोखे।।

हेर गगन भरि जागे सुन्दर, जागे तरङ्गे जीवन-सागर—

निर्मल प्राते विश्वेर साथे, जाग अभय अशोके।।

अर्थात्—

ज्योति-विभासित आँखें खोल!

जाग रे मन! मङ्गल-लोक में अमल अमृत-मय नव आलोक में!

देख, गगन-भर में सुन्दर जाग रहा है—

जाग रहा है लहरें उठा-उठाकर जीवन-सागर!

तू भी जाग रे, मन! इस निर्मल प्रभात में—

जाग विश्व के साथ अभय में, अशोक में!!

ईश्वर करे! **'कुम्भ-पर्व'**, २००१ में हम सब उक्त लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकें!!

* * *

कुम्भात्मिका विद्या

भगवान् आदि शङ्कराचार्य ने **'कुम्भात्मिका विद्या'** की स्तुति करते हुए उसके सेवन को कहा है। यथा—

बन्ध-त्रयाभ्यास-विपाक-जातां, विवर्जितां रेचक-पूरकाभ्याम्।

विशोषयन्तीं विषय-प्रवाहं, विद्यां भजे केवल 'कुम्भ'-रूपाम्।।

अर्थात् जालन्धर, उड्डियान आदि बन्ध-त्रय के अभ्यासों से शरीर को परिपक्व कर, रेचक-पूरक का परित्याग कर विषय के प्रवाह को सुखा कर, केवल 'कुम्भ'-रूप में विद्या का अभ्यास करें।

'कुम्भ'-पर्व के रक्षक देव—'वृहस्पति-सूर्य-चन्द्र-शनि'

'कुम्भ'-पर्व का लक्ष्य—'अमृत की प्राप्ति' है। **'अमृत की प्राप्ति'** सहज सम्भव नहीं है। इसके लिए **विशेष साधन** की आवश्यकता होती है। **'पुराण'** के रचयिताओं ने इस बात को ध्यान में रखा है और इसके लिए **'कुम्भ'-पर्व की कथा—'समुद्र'-मन्थन को सोचा-समझा घुमाव** दिया है। वे कहते हैं, **'अमृत'-कुम्भ—'इन्द्र'** को प्राप्त हुआ था। देवताओं के सङ्केत से **'इन्द्र'** के पुत्र **'जयन्त'** जब **'अमृत'-कुम्भ** को लेकर चल पड़े थे, तब **'अमृत'** के लिए **सुर-असुर में विवाद** हुआ। विवाद होने पर **भगवान् विष्णु** ने **'मोहिनी'**-अवतार लेकर **'अमृत'** को देवताओं में बाँटा। **'असुर'—'अमृत'** से वञ्चित रह गए। विवाद में **'पृथ्वी'** के जिस-जिस स्थान में **'कुम्भ'** से **'अमृत'** छलका था, वहीं **'कुम्भ'-पर्व** मनाया जाता है।

'पुराण'-कर्त्ता यह भी बताते हैं कि **'अमृत'-कुम्भ** की रक्षा में **'बृहस्पति-सूर्य-चन्द्र-शनि'** ने सहायता की थी। **'चन्द्रमा'** ने **'अमृत'** को **'कुम्भ'** से गिरने से, **'सूर्य'** ने **'कुम्भ'** को फूटने से, **'वृहस्पति'** ने असुरों द्वारा **'अमृत'** के अपहरण होने से और **'शनि'** ने **देवराज 'इन्द्र'** के भय से **'अमृत'-कुम्भ की रक्षा** की थी।

इस प्रकार **'वृहस्पति-सूर्य-चन्द्र-शनि'—'कुम्भ'-पर्व के 'रक्षक देव'** कहलाते हैं। **'पृथ्वी'** पर इन **'रक्षक देवों' की विशिष्ट ज्ञान-मय-स्थिति में 'कुम्भ'-पर्व** मनाया जाता है। यथा—

(१) **'तीर्थ-राज' प्रयाग** में **'वृहस्पति'** जब **'मेष'**-राशि में प्रवेश करते हैं और **'चन्द्रमा'-'सूर्य'** दोनों **'मकर'**-राशि में होते हैं, तब **गङ्गा-यमुना-सरस्वती-सङ्गम-क्षेत्र में 'कुम्भ'-पर्व** मनाया जाता है।

(२) **'हरिद्वार'** में **'बृहस्पति'** जब **'कुम्भ'**-राशि में और **'सूर्य'—'मेष'**-राशि में होते हैं, तब **गङ्गा-तट** पर **'कुम्भ'-पर्व** मनाया जाता है।

(३) **'उज्जैन'** में **'वृहस्पति'** जब **'सिंह'**-राशि में और **'सूर्य'—'मेष'**-राशि में होते हैं, तब **शिप्रा-तट** पर **'कुम्भ'-पर्व** मनाया जाता है।

(४) **'नासिक'** में **'वृहस्पति'** जब **'सिंह'**-राशि में तथा **'सूर्य'** भी **'सिंह'**-राशि में होते हैं, तब **'गोदावरी'-तट** पर **'कुम्भ'-पर्व** मनाया जाता है।

स्पष्ट है कि उक्त विशिष्ट योगों के निर्धारण में **विशेष ज्ञान-विज्ञान की बातें** छिपी हैं, जिन्हें हृदयङ्गम कर हम **'कुम्भ'-पर्व के कठिन लक्ष्य 'अमृत' के पास** पहुँच सकते हैं। पहले तो यह देखिए कि **'रक्षक देवों'** का उल्लेख इतने विस्तार व विविधता-पूर्ण ढङ्ग से करने के पीछे हमारे **पुराणों का उद्देश्य** क्या है? निश्चय ही इसके सूत्र **'वेदों'** में हैं। **'ऋग्वेद'** (४-८-१४) देखिए—

त्रातारो देवा! अधि वोचता नो मानः निद्रा ईशत मोत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम।।

अर्थात् हे रक्षक देवों! हमें उपदेश दो, हम निद्रा के वश में न हों और व्यर्थ बकवाद न करें, हम परमात्मा के प्रिय बनें, श्रेष्ठ वीर हों तथा यथार्थ ज्ञान को जानें।

स्पष्ट है कि **'रक्षक देवों'** का **विशिष्ट स्मरण यथार्थ ज्ञान-प्राप्ति** के लिए है। **'अमृत'** अर्थात् **'परमात्मा'** के **'प्रिय'** अथवा **'पात्र'** बनने के लिए है।

अब **'रक्षक देव'—'बृहस्पति-सूर्य-चन्द्र-शनि'** आदि पर भी विचार करें। **'बृहस्पति'**, **'सूर्य'** आदि से हमें क्या **'चिन्तन'** करना है या क्या **'शिक्षा'**, **'भाव'** आदि ग्रहण करना है, यह **व्यापक विचार-विमर्श का विषय** है। यहाँ संक्षेप में ही कुछ चर्चा सम्भव है।

'बृहस्पति', **'सूर्य'** के **वैदिक परिचय** के लिए **'ऋग्वेद'** (४-५०(४)) को ही देखिए—

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो, महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।

सप्तास्यस्तु विजातो रवेण, विसप्त-रश्मि रधमत्त तमांसि॥

अर्थात् **परम व्योम में सर्व-प्रथम प्रकट होनेवाले परा-वाणी के स्वामी बृहस्पति ने ज्योति का प्रकाश किया। शब्द-रूपी अपने उपदेश से सप्त मुखवाला, सात छन्दों में विभक्त, सात रश्मिवाले सूर्य की तरह समस्त अन्धकार का विनाश करनेवाला हुआ।**

वेदों के 'ज्ञान-विज्ञान' पर ध्यान दीजिए। **'वेद'** बताते हैं कि **'बिन्दु'-स्वरूप** में रहनेवाला **'प्रकाश'-रूप 'पर-ब्रह्म'—परमात्मा** अपनी **'इच्छा'**-शक्ति से **'जगद्'-रूप** धारण करने की भावना से प्रकट होता है। प्रथम प्रकटीकरण-रूपी **'क्रिया'**-शक्ति से **'नाद'**-रूप **अव्यक्त ध्वनि** प्रगट होती है। इस **'नाद'** में **'ज्ञान'**-शक्ति का योग होने पर **'वर्ण'—'वाणी'** की अभिव्यक्ति होती है, जिसका नाम **'बृहती'** है। यह **'बृहती वाणी'—'परम व्योम'** में प्रकट होती है और इस वाणी के स्वामी **'बृहस्पति'** हैं, जो **अन्तर्यामी** हैं, **सम्पूर्ण विश्व के सञ्चालक** हैं एवं सबके **'गुरु'** हैं। जगत् का सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान इन्हीं **'बृहस्पति'** से प्रकट हुआ है। आप **'बृहस्पति'** की कृपा से ही जगत् का **'अज्ञान'-रूपी अन्धकार** दूर होता है। आदि-आदि।

और भी देखिए, **'बृहस्पति'-तत्त्व** स्पष्ट होगा (ऋग्वेद ४-५०-३)—

बृहस्पते! या परमा परावदत, आत ऋत-स्पृशो निषेदुः।

तुभ्यं खाता अवता अद्रि दुग्धा, मधश्चोतन्ति अभितो विरप्शम्॥

अर्थात् **हे बृहस्पति-रूप परमेश्वर! सबसे श्रेष्ठ ज्ञान की रक्षा करनेवाली आपकी वाणी है और उसका साक्षात् करनेवाले महर्षि-गण आपके चारों ओर बैठे हैं। वे जल से पूर्ण कूप की तरह तथा पर्वतों से मधुर झरते हुए निर्झर जल की तरह ब्रह्मानन्द-रस की वर्षा करते हैं।**

देव-गुरु बृहस्पति का संक्षिप्त परिचय उक्त दोनों **'वेद'-मन्त्रों** से हो जाता है। **पुराणों** ने **'अमृत'-कुम्भ की रक्षा 'बृहस्पति' द्वारा** होती है; जो यह बात कही है, वह भी समझ में आने लगती है। **'कुम्भ'-पर्व** पर इनका **विशेष चिन्तन-मनन** लक्ष्य-प्राप्ति में कितना उपादेय होगा, यह भी स्पष्ट होता है। अन्य **रक्षक देवों** के बारे में भी कुछ ऐसा ही **ज्ञान-विज्ञान** है। विस्तृत

गहन चर्चा सम्भव नहीं है। **विश्व-कवि ठाकुर** के प्रस्तुत सरस गीत से कई **'रहस्य'** खुलते हैं—

आनन्द-धारा बहिछे भुवने,
दिन-रजनी कत अमृत-रस उथलि याय अनन्त गगने॥
पान करे रवि शशी अञ्जलि भरिया,
सदा दीप्त रहे अक्षय ज्योति,
नित्य पूर्ण धरा जीवने किरणे॥
बसिया आछ केन आपन-मने,
स्वार्थ-निमगन की कारणे।
चारि दिके देखो चाहि हृदय प्रसारि,
क्षुद्र दुःख सब तुच्छ मानि,
प्रेम भरिया लहो शून्य जीवने॥

अर्थात्—**संसार में आनन्द की धारा बह रही है!**

रातों दिन कितना 'अमृत'-रस उछलता रहता है अनन्त आकाश की ओर!!
'सूर्य-चन्द्र' उसे अञ्जलि भर-भर कर पीते हैं और दीप्त रहते हैं अक्षय ज्योति से—
नित्य पूर्ण रहती है 'धरा'— जीवन से, प्रकाश से!!
किसलिए बैठे हो अपनी ही मर्जी से स्वार्थ में निमग्न?
देखो चारों ओर— खोलकर हृदय, सारे क्षुद्र दुःख को तुच्छ मानकर,
भर लो रिक्त जीवन में 'प्रेम'!!

अहा! **कवि-वर की वाणी** कितनी स्पष्ट है। **'आनन्द की धारा'** तो सर्वत्र सब समय बह रही है। इस धारा को पीनेवाले **'सूर्य-देव'**, **'चन्द्र-देव'** प्रत्यक्ष दिखते भी हैं, किन्तु हम अपने अज्ञान में सिकुड़ते ही जाते हैं और फिर **भय, शोक** को प्राप्त होकर अन्ततः मृत्यु की ओर बढ़ते हैं। मृत्यु से बचने के लिए **'अमृत'-प्राप्ति** के लिए सबसे पहले **'ज्ञान'-चक्षुओं** को ही खोलने की आवश्यकता है। **'सूर्य' का अर्थ** ही है, प्रेरणा करनेवाला—**'सुवति प्रेरयति इति सूर्यः।'**

ऋषियों के अनुसार मानव-शरीर में ७२,००० नाड़ियाँ हैं। इन नाड़ियों का सीधा सम्बन्ध **'सूर्य'** से है। खाए-पिए सभी पदार्थों का पाचन इनके द्वारा ही होता है। **'सूर्य'-किरणों** से अनेक रोगों की चिकित्सा भी की जाती है। **'आरोग्यं भास्करादृ इच्छेत्'**— इस प्रमाण से समस्त प्राणियों को **'सूर्य'-देव** ही आरोग्य प्रदान करते हैं। प्रसिद्ध **'सूर्य नमस्कार'**,

'आदित्य-हृदय'-नामक प्रयोग भी आरोग्य देनेवाले हैं।

'राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी महाराज, दतिया (म०प्र०) के शब्दों में **'ज्योतिष्मती'**-नाम की औषधि, जो समस्त रोगों की औषधि है, **'सूर्य'-लोक** से **'भू'-लोक** में आई है। इस औषधि में **'सूर्य'-किरणों** का ही प्रभाव है। **'नेत्र'-व्याधि** की तो यह अपूर्व औषधि है। यह दिव्य दृष्टि प्रदान करती है।

वेदों का सार— 'गायत्री मन्त्र' भी **'सूर्य'** का ही मन्त्र है। इसके अभ्यास से **बुद्धि का वैभव** बढ़ता है।

उपनिषदों में **'सूर्य'** को **प्रजा का 'प्राण'** बताया गया है। **'प्राण'** जब **'असुर'** से आवृत्त हो जाता है अर्थात् उसके वश में आ जाता है, तो **'प्राण-धारा'** में व्यति-क्रम आ जाता है और वह **आसुरी भाव** में बहने लगता है। संक्षेप में, यदि **'पुराण'** यह कहते हैं कि **'सूर्य'** ने **'अमृत'-कुम्भ को फूटने से बचाया,** तो तत्त्वतः यह सत्य ही है, गल्प नहीं।

'चन्द्र'-विषयक हमारा **प्राचीन ज्ञान-विज्ञान** भी अत्यन्त विस्तृत है। **वैदिक वचन है—'चन्द्रमा मनसो जातः, सूर्यो ज्योतिरजायत।'** अर्थात् **'चन्द्रमा'—मन के देवता** हैं। आधुनिक विज्ञान भी आज इसे स्वीकार कर रहा है। मनो-रोगियों पर इस तथ्य के आधार पर शोध-कार्य हो रहे हैं। हमारे **'वेदों'** की महानता है कि जिस परिणाम पर आधुनिक वैज्ञानिक आज अत्यधिक परिश्रम कर पहुँच रहे हैं, उसकी घोषणा हमारे ऋषियों ने कई हजार वर्ष पहले ही कर दी थी।

वैदिक साहित्य में **'चन्द्रमा'** के एक-दो-तीन नहीं— सैकड़ों नाम हैं। इन नामों में **'चन्द्रमा'** को **अमृत-वर्षा करनेवाला, शीतलता देनेवाला, स्वच्छ प्रकाश देनेवाला** कहा हैं। ऐसे ही कुछ अन्य रोचक नामों को जानिए और समझिए—**औषधीश, निशा-पति, हिमांशु, श्वेत-वाहन, तुषार-किरण, सुधा-निधि, तुङ्गी, अमृत, श्वेत-द्युति, शीतल-मरीचि** इत्यादि।

हमारे यहाँ **'चन्द्रमा'—'सूर्य'** के नामों की केवल चर्चा ही नहीं, अपितु यह भी बताया गया है कि हमारे शरीर में **'चन्द्रमा'—'सूर्य'** की स्थापना है। **भ्रुवों के मध्य में,** जहाँ पर हम **'टीका'** अथवा **'चन्दन'** लगाते हैं, वहीं पर **'चन्द्र-मण्डल'** है। साधना-क्षेत्र में इसका नाम **'सोम-मण्डल'** है और **'तीर्थ'-स्थानों में यही 'प्रयाग'** है। हम **'ध्यान'** में अपने चित्त को इसी स्थान पर अथवा इसी **'मण्डल'** में स्थिर करते हैं। ऐसा करने से ही **'ज्ञान'-चक्षु** खुलते हैं और **'अमृत'-प्राप्ति की यात्रा** प्रारम्भ होती है। **'हठ-योग-प्रदीपिका'** में लिखा है—**'भ्रू-मध्य-भागस्य सोम-मण्डलम्।'** इसको स्पष्ट करते हुए टीकाकार लिखते हैं—**'चन्द्रात् स्रवति यः सारः स स्यादमर-वारुणी।**

योग-शास्त्र में **'सूर्य'** व **'चन्द्र'**-नाम की नाड़ियाँ भी हैं। योगी पद्मासन लगाकर इन नाड़ियों में **'प्राण'** को भरकर **'ज्ञान'— 'अमृत'** को चखता है—**'बद्ध-पद्मासनो योगी, प्राणं चन्द्रेण पूरयेत्।'**

उपर्युक्त प्रमाणों से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि **'सूर्य'-'चन्द्र'— 'मानव'-क्षेम के देवता** हैं। पुराण यदि यह लिखते हैं कि **'चन्द्रमा'** ने **'अमृत'** को **'कुम्भ'** से गिरने से बचाया था, तो वह पूर्णतया **ज्ञान-विज्ञान** पर आधारित है, कोरी कल्पना नहीं।

पुराणों द्वारा **'इन्द्र', 'जयन्त', 'शनि'-देव** की चर्चा भी निरर्थक नहीं है। **'शनि'-देव—'सूर्य' के पुत्र** हैं। **सूर्य-पत्नी 'छाया'** से आपका जन्म बताया जाता है। कहते हैं कि **'शनि' देव की कृपा** से व्यक्ति एक ओर **महान् कार्य** करता है, तो दूसरी ओर **'शनि' देव की कु-दृष्टि** से वह **महान् कष्ट** भी पाता है। सुख और दुःख— दोनों के देनेवाले **'शनि'-देव** हैं। आप **'इन्द्र'** अर्थात् **नवोदित मुख्य मन** के भय से **'अमृत'-कुम्भ की रक्षा** करते हैं। **'इन्द्र'** का अर्थ है **'चेतनाओं का स्वामी'— 'इन्दतीति इन्द्रः।'** चेतनाओं के स्वामी **'इन्द्र'** को ही **'अमृत'-कुम्भ की प्राप्ति** होती है। साधना के क्षेत्र में **'इन्द्र'—मुख्य मन, मुख्य प्राण** हैं। **'इन्द्र'** से **'जयन्त'** को **'अमृत'-कुम्भ** प्राप्त होता है, जो **'इन्द्र' का पुत्र** है। स्पष्ट है कि **'जयन्त'—मुख्य मन, मुख्य प्राण का नवोदित अंश** है। **'असुरों'** का विवाद इन्हीं **'जयन्त'** से होता है। **'सुरत्व'** के रहितत्व को **'असुर'** कहते हैं। **'सुर' —'पुर प्रकाशे + कः = सुर'** का अर्थ है—**'प्रकाशक।'** 'असुर' का अर्थ है— **ज्ञान-विरोधी, ज्ञान-रहित** या **तम— 'प्रकाश-विरोधी रहितो वा असुरः'।**

उपर्युक्त आधार पर **'समुद्र'-मन्थन-कथा** के सभी पक्ष पूर्णतया सत्य सिद्ध होते हैं। इस कथा के **'ज्ञान-विज्ञान'** में डूबकर ही **'कुम्भ'-पर्व का आयोजन प्राचीन-से-प्राचीन और विशाल-से-विशाल** बना है। यदि हमें इस **'पर्व'** से कुछ प्राप्त करना है, तो इस **'ज्ञान-विज्ञान'** में डूबना ही होगा। इस **'ज्ञान-विज्ञान'** की अनेक धाराएँ हैं। कहीं से भी प्रारम्भ करें, **'अमृत'-रूपी लक्ष्य** की ओर अग्रसर होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

चाहे तो **'ज्योतिष'** की दृष्टि से **'धर्म'**-रूपी **'वृष'-राशि, 'मकर'-राशि, 'सिंह'-राशि** से विचार करें। अथवा **'सूर्य-चन्द्र'** के विभिन्न संयोगों से बननेवाली **पावन तिथियों— 'पूर्णिमा-संक्रान्ति-अमावास्या-पञ्चमी-त्रयोदशी'** से विचार करें। या फिर **'तीर्थ'-स्थान— 'प्रयाग', 'गङ्गा-यमुना-सरस्वती-सङ्गम'** से विचार करें। सभी बिन्दुओं से **'अमृत'-मण्डल के दर्शन** होंगे। **परम पावन 'कुम्भ'-पर्व की विलक्षणता** ऐसी ही है। एक **विशाल 'कुम्भ'** के समान इसने **ज्ञान-विज्ञान की असीम धाराओं** को अपने में समाहित कर रखा है।

'अमृत-पान' अर्थात् विपरीत-करणी मुद्रा

'नाभि'-प्रदेश में **'अग्नि'**-रूपी **सूर्य** निवास करता है और **'अमृत'**-मय **चन्द्रमा** तालु-मूल में स्थित है। तालु-मूल में नीचे की ओर मुख करके रहनेवाला **'चन्द्रमा'** जिस **'अमृत की वर्षा'** करता है, उसे ऊपर की ओर मुख किया हुआ **'अग्नि'-रूपी सूर्य** पी लेता है। जो इस **'विपरीत-करणी मुद्रा'** को जानता है, वह **'अमृत'** को **'अग्नि'** के मुख से हटा कर स्वयं पी लेता है। (देखिए, **'गोरक्ष-पद्धति'**)।

'कुम्भ'-पर्व के मुख्य आराध्य— 'महा-देव'

जिस प्रकार **'कुम्भ'-स्थापना-पूजा** में **'ब्रह्मा-विष्णु-महेश'**—आदि अनेक देवताओं की पूजा होती है, किन्तु मुख्यतया **'शुम्भ'—'महादेव'** की ही पूजा का निर्देश है, ठीक उसी प्रकार **'कुम्भ'-पर्व** के मुख्य आराध्य भी **'महा-देव'** ही हैं। **'समुद्र'-मन्थन-कथा** में यह रहस्य बहुत ही रोमाञ्चक ढङ्ग से वर्णित है। वहाँ कहा गया है कि **'समुद्र-मन्थन'** के समय सबसे पहले भयङ्कर **'विष'** उत्पन्न हुआ, जिससे **सृष्टि का संहार** होने लगा। सभी 'देव-असुर' भयभीत हो उठे। उन लोगों ने **'महा-देव'** से प्रार्थना की। **'महा-देव'** ने सारा **'विष'** स्वयं पीकर **'कण्ठ'** में धारण कर लिया और सबकी रक्षा की। **'विष'** को **'कण्ठ'** में धारण करने से उनका **'कण्ठ नीला'** हो गया और वे **'नील-कण्ठ'** कहलाए।

स्पष्ट है कि यदि **भगवान् महा-देव—'विष-पान'** न करते, तो **देवताओं को 'अमृत' की प्राप्ति** ही सम्भव न होती। दूसरे शब्दों में, **'अमृत'-प्राप्ति** के लिए देवताओं-असुरों में पुनः उत्साह, प्रेरणा, शक्ति तब उत्पन्न हुई, जब **'महा-देव' ने 'विष-पान'** किया। अस्तु, **'अमृत'-प्राप्ति हेतु मनाए जानेवाले 'कुम्भ'-पर्व के मुख्य आराध्य—'महा-देव'** ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि **'तीर्थ-राज' प्रयाग** में **'कुम्भ'-पर्व का समापन—'महा-शिव-रात्रि'** से ही होता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि **'कुम्भ'-पर्व** के आयोजकों ने यह ध्यान रखा है कि **'तीर्थ-राज' प्रयाग के विशाल महिमा-मय 'कुम्भ'-पर्व** में आए श्रद्धालु **भगवान् महा-देव के पावन स्मरण-चिन्तन-मनन** के साथ ही वापस अपने-अपने घर को जाएँ और अपनी **'अमृत'-प्राप्ति की यात्रा** को बराबर गति देते रहें।

सचमुच **'विष-पान'**-सम्बन्धी **महा-देव** की उक्त कथा अपने आप में जितनी रोमाञ्चक है, उतनी ही **'विज्ञान'-मय** भी है। प्रायः हम लोग **'विष-पान'** के रोमाञ्चक-भावों को ही ग्रहण करते हैं, उन भावों को ग्रहण नहीं करते, जो इस **महान् घटना-क्रम** के धरातल से उठते हैं। ऐसे भाव ही **'विष-पान' से सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान** की सूचना देते हैं। यदि यह **'ज्ञान-विज्ञान'** समझ लिया जाए, तो फिर **'अमृत-प्राप्ति'**-रूपी कठिनतम लक्ष्य भी सुलभ हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं। यह भी सच है कि यह **'ज्ञान-विज्ञान'** समझना हँसी-खेल नहीं है, किन्तु असम्भव भी नहीं है। विशेष कर भाग्य-वश जब पूर्वजों के रूप में हमारे पास **ऋषि-तुल्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर** जैसे अनेक **चिन्तकों-मनीषियों** की धरोहरें हैं, तब कठिनाई किस बात की! हमें **रहस्योद्घाटन** हेतु बस इन पूर्वजों की शरण में जाना मात्र है, उनकी रचनाओं को **श्रद्धा-पूर्वक सुनना-विचारना** है। देखिए, **कवि-वर** के शब्द तो बहुत स्पष्ट ध्वनित हो रहे हैं—

दुःख यदि ना पाबे, तो दुःख तोमार घुचबे कबे?
विष के विषेर दाह दिए, दहन करे मारते हबे।।

अर्थात्—
दुःख पाएगा नहीं, तो दुःख तेरा जाएगा कैसे?
मारना होगा विष को, विष की ज्वाला से दग्ध करके!!

'वेद'-विज्ञान को भी देखिए! **'वेदों'** के अनुसार सबसे महान् **'महा-देव'** हैं। वे **'निर्गुण'** भी हैं और **'सगुण'** भी। वे **'निष्कल'** हैं और **'सकल'** भी। वे स्वयं को **ब्रह्मा-विष्णु** एवं **रुद्र**-रूपों में अभिव्यक्त करके ब्रह्माण्ड की **सृष्टि** करते हैं, पालन करते हैं और उसका **संहार** भी करते हैं। **'अमृत'** और **'विष'-रूपी 'मृत्यु'** उनके दो भाग हैं अथवा **'सत्य'** एवं **'विश्व'** उनके दो तत्त्व हैं। **'अमृत'**-अविनाशी है। **'विष'**-विनाशी है। **'सत्य'**—पूर्ण है, शान्त है, आनन्द है। **'विश्व'**— अपूर्ण है, अशान्त है, अनित्य है, दुःख-रूप है। दोनों भाग—दोनों तत्त्व यद्यपि **तमः-प्रकाश-वत् परस्पर विरुद्ध** हैं, तथापि दोनों सदा साथ रहते हैं। **'अमृत'—'विष'-रूपी मृत्यु** के बिना नहीं रहता। **'मृत्यु'—'अमृत'** के बिना रह नहीं सकती।

बात विचित्र है, किन्तु है पूर्ण सत्य! जैसे **'जल'** से घोर शत्रुता रखनेवाला **'अग्नि'**, **'जल'** में प्रविष्ट हो—**'जल'** को गरम कर, अपने शत्रु **'जल'** के साथ मिला रहता है। जैसे **'चन्द्रमा'** का पिछला भाग (जो हमें दिखाई नहीं देता), **'अन्धकार'**-भाग और आगे की ओर का (सूय की ओर का) **'प्रकाश'-भाग** परस्पर विरुद्ध दिखाई देते हुए भी साथ मिले रहते हैं। जैसे सर्वथा **'शान्त' जल** और **सर्वथा 'अशान्त' लहरें** परस्पर ओत-प्रोत रहती हैं, ठीक उसी तरह **महान् महा-देव** के दो भाग—**'अमृत'** और **'विष'** अन्तरान्तरी-भाव-सम्बन्ध से परस्पर ओत-प्रोत रहते हैं। देखिए, **'श्रुति'** (शतपथ ब्राह्मण, १०।३।६।४)— **'अन्तरं मृत्यो-रमृतं मृत्यावमृतमाहितम्।'**

अर्थात् **मृत्यु** (विष) के पेट में **'अमृत'** है और **मृत्यु** (विष) में **'अमृत'** अभिव्याप्त है। तात्पर्य यह है कि **'मृत्यु'** (विष) और **'अमृत'** में आधार-आधेय का भाव नहीं है, **'अमृत'** और **'मृत्यु'** दो होते हुए भी **'सत्ता'** के एक होने से दोनों दो नहीं, एक ही हैं। जिस प्रकार **एक कमरे में रखे हुए 'दीपक' के प्रकाश में** उसी 'प्रकाश-स्थान' में **दूसरे 'दीपक' का प्रकाश** समा जाता है और **'प्रकाश'** के दोनों आधार अलग-अलग होते हुए भी **'प्रकाश' एक** हो जाता है, ठीक उसी प्रकार।

'वेद'-विज्ञान उक्त विषय में बहुत स्पष्ट है। वे कहते हैं **'प्रजा-पति महा-देव'** में **'सत्य'** (अमृत) और **'विश्व'** (मृत्यु) दो भाग हैं। **'मर्त्य-विश्व'—प्रजा-पति का शरीर** है एवं **'अमृत-सत्य'**—उस शरीर की **'आत्मा'** है। **आत्मा-शरीर, सत्य-विश्व, अमृत-विष, रस-बल**— ये सब पर्याय हैं। दोनों की समष्टि ही **'प्रजा-पति महा-देव'** हैं— **'तस्यह प्रजा-पतेः अर्धमेव मर्त्यमासीदर्धममृतम्।'** (शतपथ ब्राह्मण, १०।१।३।२)

ऐसा ही **'गीता'** में **भगवान् कृष्ण—अर्जुन** से कहते हैं— **'अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाह-मर्जुन!'** ('गीता', ६।१६)

उक्त **अमृत-विष, सत्-असत्, सत्य-अनृत 'महा-देव'** से ही हमारी या हमारे संसार की उत्पत्ति है। इसलिए हमारे भी दो भाग हैं—**'सत्य'**, **'अनृत'**। **'देवता'**— हमारी **'चैतन्य'-शक्तियाँ** **'सत्य'** हैं, **'अमृत-मय'** हैं। **'असुर'**— हमारी **चैतन्यत्व को ढँकनेवाली शक्तियाँ 'अनृत'** हैं,

'विष'-मय हैं। जहाँ देखिए, वहाँ इन्हीं दो के भाव हैं। इसी विज्ञान को लक्ष्य में रखकर यह कहा गया है कि—**"द्वयं वा इदं, न तृतीयमस्ति— सत्यं चैवानृतं च।"**

दो को ही ध्यान में रखकर हमारे यहाँ **'विद्या'** और **'अविद्या'—दोनों की उपासना का उपदेश** हुआ है। देखिए, **'ईशावास्योपनिषद्'—**

विद्यां चाविद्यां च, यस्तद्वेदोभयंसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

अर्थात् **'विद्या'** और **'अविद्या'**— इन दोनों के साथ जो **'आत्म-तत्त्व'** को जानते हैं, वे **'आत्म-तत्त्व'** के सहारे **'अविद्या'** से मृत्यु को लाँघकर **'विद्या'** से **अमृत** (अमरत्व) को प्राप्त करते हैं।

उक्त **गम्भीर 'विज्ञान'** को **गुप्तावतार बाबाश्री** सरल स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार समझाते हैं—

हमें यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि हमारा जीवन ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व-जीवन एक ऐसे **'तम'** से प्रादुर्भूत हुआ है, जिसमें **अन्तः-प्रकाश** जाग्रत् करने का गुण है। जैसे बादल काले हैं, प्रकाश को ढँक लेते हैं— फिर भी हम उन्हें **अन्धकार-मय** नहीं कह सकते क्योंकि उनमें **विद्युत्-प्रकाश उत्पन्न करने की शक्ति भी** है। ठीक इसी प्रकार कोई भी **जीवन अन्धकार-मय नहीं** क्योंकि इसका **जन्म-दाता अन्धकार—जीवन उत्पन्न करने की शक्ति या चैतन्यत्व से युक्त** है। जीवन के जनक की इसी विशेषता के कारण इसे हमारे यहाँ **'चित्-तम'** कहा गया है।

अधिक-से-अधिक स्वच्छ जीवन की प्राप्ति (**'अमृत'-प्राप्ति**) अपने वर्तमान **'तम'** को शोधने और फिर उसे सुलगाने का उपाय शोध कर **नवीन चिदङ्ग का अनुभव** करने में है। न कि किसी प्रकार के **'तम-विशेष'** अथवा **'चित्'-मात्र** से चिपकने में।

'कुम्भ'-पर्व का लक्ष्य भी यही है। उसके लक्ष्य के अनुरूप उसके **आराध्य देव** हैं। आपकी कृपा से **'अमृत-कुम्भ'-धारिणी लक्ष्मी** की प्राप्ति होती है, जो **लक्ष्य के रूप में—'अमृत'** प्रदान करती हैं। लक्ष्य के अनुसार **'लक्ष्मी' के अनेक प्रकार** हैं। **'कुम्भ'-पर्व की 'लक्ष्मी'** तो **'अमृत'-कुम्भ-धारिणी लक्ष्मी** ही हैं।

'अमृत-कुम्भ' के उद्धारक 'गरुड़'

'पुराणों' में **'अमृत'**-कुम्भ के सन्दर्भ में **'समुद्र'**-मन्थन के अतिरिक्त दो और कथाएँ हैं— (१) **महर्षि दुर्वासा की कथा** और (२) **कद्रू-विनता की कथा।** इन दोनों कथाओं में **'अमृत'-कुम्भ के उद्धारक** के रूप में **'गरुड़'** का उल्लेख है। **'गरुड़'— 'विष्णु'-रूपी जीवात्मा** के **'वाहन'-देव** हैं। आप भी **'विष'**-रूपी सर्पों को नष्ट करनेवाले हैं। आपके दो पङ्ख (द्वौ सुपर्णा) भी **'विद्या'** एवं **'अविद्या'** के बोधक हैं।

॥ ॐ कुम्भाय नमः ॥

'कुम्भ'-पर्व की पावन तिथियाँ

परिचय एवं माहात्म्य

'कुम्भ'-पर्व, 'विजय' संवत् २०५७ वि० (सन् २००१ ई०)

मुख्य पर्व

१- पौष पूर्णिमा (चन्द्र-ग्रहण)	मङ्गलवार,	०९ जनवरी, २००१
२- मकर-संक्रान्ति	रविवार,	१४ जनवरी, २००१
३- मौनी अमावास्या	बुधवार,	२४ जनवरी, २००१
४- बसन्त-पञ्चमी	सोमवार,	२९ जनवरी, २००१
५- माघी पूर्णिमा	वृहस्पतिवार,	०८ फरवरी, २००१
६- महा-शिव-रात्रि	बुधवार,	२१ फरवरी, २००१

१४- 'कुम्भ'-पर्व की पावन तिथियों में प्रयाग का कुम्भ-नगर २६
१५- 'कुम्भ'-पर्व में 'चन्द्र'-ग्रहण २७
१६- 'चन्द्र-ग्रहण'-रूपी अध्यात्म-विज्ञान २९
१७- 'कुम्भ'-पर्व की महा-पौष-पूर्णिमा ३१
१८- 'मकर'-संक्रान्ति की महिमा ३३
१९- 'मौनी अमावास्या'—एक दुर्लभ तिथि ३६
२०- 'कुम्भ'-पर्व की बसन्त-पञ्चमी की महिमा ३८
२१- 'कुम्भ'-पर्व की महा-माघी पूर्णिमा ४१
२२- 'कुम्भ'-पर्व की महा-शिव-रात्रि ४३

* * *

'कुम्भ'-पर्व की पावन तिथियों में 'प्रयाग' का 'कुम्भ'-नगर

'कुम्भ'-पर्व की **सभी तिथियाँ—परम पावन** हैं, विशेषकर **'पौष-पूर्णिमा', 'मकर-संक्रान्ति', 'मौनी अमावास्या', 'बसन्त-पञ्चमी', 'माघी पूर्णिमा', 'महा-शिव-रात्रि'**। इन सभी तिथियों में मनुष्य चाहे, तो परमात्मा के भूले-बिसरे स्वरूप को पुनः स्मरण कर **'अभिमान-राग-द्वेष-लालच'**-आदि-रूपी कष्ट-मय जीवन-यात्रा को **'शान्ति-आनन्द-मय'** बना सकता है। **'कुम्भ'-पर्व** का यह सन्देश वही प्राचीन **'वैदिक वाणी'** है, जिसके द्वारा प्राचीनतम काल से हमारे यहाँ मनुष्यों का केवल मात्र व्यक्तिगत रूप से नहीं, अपितु सामूहिक रूप से भी आह्वान हुआ है। देखिए, **अथर्व-वेद** (७-२१-१)— **"हे मनुष्यों! तुम सब लोग परमेश्वर के प्रति एक वैदिक वाणी द्वारा एकत्र हो। जो परमात्मा एक सर्व-व्यापक और सब मनुष्यों के लिए सत्कार करने योग्य अतिथि के तुल्य है, वह संसार की उत्पत्ति के पूर्व या पश्चात् जगत् के उत्पन्न होने पर भी सर्वत्र इसमें व्याप्त हो रहा है।"**

उक्त **'वैदिक वाणी'** के सन्दर्भ में ही **'कुम्भ-पर्व'** का **आयोजन** हमारे यहाँ हुआ है। **'पावन-तिथियाँ'** भी उक्त **'वैदिक वाणी'** को ही पुष्ट करने के लिए हैं। इस **'वेद-वाणी'** के पालन से ही, हमें **'द्यौ'-लोक** और **'पृथ्वी'-लोक** का यश प्राप्त होता है। भ्रम-वश आज हम लोग इसे भूलकर झूठी प्रशंसा—झूठे प्रपञ्च का विस्तार ही **'यश'** समझ रहे हैं, **जो कल्याणकारी** नहीं है—सर्वथा नाशवान् है। **पावन तिथियों** को ऐसी नाशवान् अभिलाषाओं में नष्ट करना कहीं से भी बुद्धि-सम्मत नहीं है। इसी सन्दर्भ में देखिए, **'यह प्रयाग का कुम्भ-नगर'**—

यह प्रयाग का कुम्भ-नगर
तम्बू और कनात खड़े हैं!
सौ-सौ झण्डे साथ गड़े हैं,
देसी और विदेशी चेहरे—
साधो नङ्ग-धडङ्ग पड़े हैं!

★

गङ्गा-यमुना और सरस्वती,
काँप रही हैं थर-थर, थर-थर!
बोलो बम-बम, बोलो हर-हर,
हरे कृष्ण गिरिवर गिरिधर—
यह 'प्रयाग' का कुम्भ-नगर!

★

सङ्गम तीरे लाखों जम-घट,
बन्द पड़ा है चिर 'अक्षय-वट'!
कल्प-वास कर रहे निर्गुणी—
राम-भरोसे गङ्गा के तट!

★

अखबारों में रङ्ग-बिरङ्गे,
चित्र उभरते अक्षर-अक्षर!
बोलो बम-बम, बोलो हर-हर,
हरे कृष्ण गिरिवर गिरिधर—
यह 'प्रयाग' का कुम्भ-नगर!

★

घड़ी-घण्ट बज रहे नगाड़े,
अपने-अपने भिन्न अखाड़े!
बहती गङ्गा होड़ लगी है,
पूस-माघ में पीकर काढ़े!

★

रस्सा-कशी पाप-पुण्य में,
जम्बु-द्वीप है— गह्वर-गह्वर!
बोलो बम-बम, बोलो हर-हर,
हरे कृष्ण गिरिवर गिरिधर—
यह 'प्रयाग' का कुम्भ-नगर!

★

लोक-गीत, बिरहा, कौवाली,
नेटुआ, गोड़ नृत्य-गढ़वाली!
भजन-कीर्तन, सन्त-समागम,
कवि-सम्मेलन टोलीवाली!

★

धूम मची है पण्डालों में—
सौ-सौ भोंपू, तोते के स्वर!
बोलो बम-बम, बोलो हर-हर,
हरे कृष्ण गिरिवर गिरिधर—
यह 'प्रयाग' का कुम्भ-नगर!

★

❖ श्रीबृजमोहन श्रीवास्तव 'चञ्चल'

'कुम्भ'-पर्व में 'चन्द्र'-ग्रहण

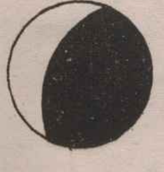

मङ्गलवार, ६-१० जनवरी, २००१ को **'महा-पौष-पूर्णिमा'** की रात्रि में **चन्द्र-ग्रहण** का होना एक अभूतपूर्व संयोग है। विशेषकर इसलिए कि **'तीर्थ-राज' प्रयाग** में इस दिन से **'कुम्भ'** का दुर्लभ पावन काल प्रारम्भ हो रहा है। **'प्रयाग'** में **'ग्रहण का स्पर्श'** रात्रि १२ बज कर ८ मिनट पर होगा। उसका **मध्य-काल** रात्रि में १ बजकर ४६ मिनट पर होगा और **मोक्ष—** रात्रि में ३ बजकर २५ मिनट पर होगा। ऋषियों के मत से **'ग्रहण के स्पर्श-काल'** से ९ घण्टे पूर्व **'सूतक'** लग जाता है, अतएव उसी समय से समर्थ लोगों को व्रतादि नियमों का पालन करना चाहिए। जो नियमों का पालन नहीं करता, उसको हानि पहुँच सकती है। केवल बालकों, बूढ़ों और रोगियों को उनकी असमर्थता के कारण क्षम्य माना गया है। **सूतक-काल** में खान-पान, निद्रा, लघु-शङ्का, शौचादि सांसारिक कर्म निषिद्ध हैं। उस अवधि में केवल **आध्यात्मिक चिन्तन** और **पूजा-पाठादि** ही करना चाहिए।

'चन्द्र'-ग्रहण की दशा में **'चन्द्रमा'—पृथ्वी की छाया में** आ जाता है। इस छाया को **'राहु'**-नाम से लोग जानते हैं। पौराणिक कथा के अनुसार **'समुद्र-मन्थन'** के बाद जब **'अमृत'** का पान देव-गण कर रहे थे, उस समय एक दैत्य देवता का रूप धारण कर उनकी पंक्ति में इस आशय से बैठ गया कि **अमृत** पीकर वह भी अमर हो जाए। **सूर्य** और **चन्द्र** देवों ने उसे पहचान लिया, किन्तु तब तक वह **अमृत** का एक घूँट ले चुका था। **भगवान् विष्णु** के **सुदर्शन चक्र** द्वारा तत्काल ही उसका सिर काट दिया गया। इस प्रकार शिरो-भाग से **'राहु'** और अधो-भाग से **'केतु'**- नामक दो दैत्य अस्तित्व में आ गए। वही **राहु दैत्य** अवसर पाने पर **सूर्य** और **चन्द्र** का नाश करने का प्रयत्न करते हैं, जिससे **'सूर्य-ग्रहण'** एवं **'चन्द्र-ग्रहण'** होते हैं। कहते हैं कि **ब्रह्मा जी** ने **'राहु'** और **'केतु'** को यह वरदान दिया है कि **'ग्रहण-काल'** में दिए गए दानों एवं आहुतियों से तुम्हें तृप्ति मिलेगी। इस कथा के प्रभाव से सामान्य जनता **'ग्रहण-काल'** में धर्म-कर्म करने में तत्पर रहती है।

वास्तव में उक्त कथा का उद्देश्य लोगों को **'ग्रहण-काल'** के महत्त्व से परिचित कराने का रहा है। ऋषियों ने **'काल'** के एक-एक क्षण का गहन अध्ययन किया है और उनका लोग अपने हित में उपयोग कर सकें, उसके लिए उनके अनुरूप विधि-विधानों की व्यवस्था भी की है। उदाहरण के लिए **महर्षि वेदव्यास** का कथन है कि—

इन्दोर्लक्ष-गुणं प्रोक्तं, रवेर्दश-गुणं स्मृतम्। गङ्गा-तले तु सम्प्राप्ते, इन्दोः कोटि रवेदर्शम्।।

अर्थात् **चन्द्रमा का ग्रहण-काल** सामान्य काल से एक लाख गुना अधिक फल-दायक है और **सूर्य का ग्रहण-काल** दस गुना। यदि **गङ्गा-जल** स्नान के लिए सुलभ हो, तो **'चन्द्र-ग्रहण'** एक करोड़ गुना अधिक फल-दायक है और **'सूर्य-ग्रहण'** उससे दस गुना अधिक।

यहाँ फल से आशय अच्छे और बुरे दोनों फलों से है। जिस प्रकार **गङ्गा जी** के पास सत्य बोलने से अन्य स्थानों की सत्य-वादिता से अधिक पुण्य मिलता है और झूठ बोलने से अन्य स्थानों

की असत्य-वादिता से अधिक पाप लगता है, उसी प्रकार **'ग्रहण-काल'** में जो धर्म-कर्म किए जाते हैं, वे सामान्य काल से अधिक सुफल-दायक होते हैं, किन्तु जो लोग इस काल में बुरे कर्म करते हैं, उन्हें उसका दुष्परिणाम भी उसी अनुपात में अधिक मात्रा में भोगना पड़ता है। इसी से **'ग्रहण-काल'** में अधिक-से-अधिक पवित्र रहने और अच्छे कर्म करने का निर्देश ऋषियों द्वारा किया गया है।

धर्म-शास्त्र के अनुसार **'ग्रहण का स्पर्श'** होते ही पहला कर्तव्य है स्नान करना; क्योंकि **'सूर्य'** या **'चन्द्र'** के प्रकाश के अवरुद्ध होते ही उनसे जो **'अमृत-तत्त्व'** की प्राप्ति होती है, उसमें बाधा पड़ जाने से सर्वत्र अपवित्रता या जीवनी-शक्ति में कमी उत्पन्न होती है। जल भी **अमृत-दाता** है। उसमें स्नान करने से अपवित्रता दूर होती है अर्थात् जीवनी-शक्ति पुष्ट होती है। सामान्य जल की अपेक्षा **गङ्गा**-जैसी पवित्र नदियों के जल का विशेष महत्त्व है।

'ग्रहण-काल' से पूर्व पकाए हुए भोजन में, यदि वह **'ग्रहण-काल'** में रखा रहता है, तो दोष उत्पन्न हो जाता है क्योंकि वातावरण में **'सूर्य'** या **'चन्द्र'** के प्रकाश का अभाव होने से विषाक्त अणुओं का प्रभाव बढ़ जाता है और रखे हुए खाद्य पदार्थ दूषित हो जाते हैं। इसी से **'ग्रहण-काल'** में व्रत रखने का नियम रखा गया है। सामान्य लोग **'ग्रहण-काल'** के दूषित प्रभाव से बचें और उस काल की तीक्ष्णता को अपने हित में उन्मुख करें, इसी उद्देश्य से पुराणों की शैली में ऋषियों ने चेतावनी दी है कि 'जो व्यक्ति **ग्रहण-काल में स्नान** नहीं करता, वह अगले सात जन्मों में कोढ़ी होकर दुःख पाएगा। उसे ठण्डे जल में **स्नान** करना चाहिए। **स्नान** पवित्र स्थान पर करना चाहिए। सबसे पवित्र स्थान **गङ्गा, गोदावरी** आदि पवित्र नदियों के निकट या **प्रयाग, काशी** आदि तीर्थों में होता है। केवल बच्चों, बूढ़ों और रोगियों को गर्म जल से स्नान करने की सुविधा दी गई है।

'ग्रहण' के आरम्भ हो जाने पर **देवताओं की पूजा, हवन** आदि पवित्र कर्म करने चाहिए और **ग्रहण की समाप्ति** के बाद निर्धनों, दीन-दुखियों को अन्न-वस्त्रादि का दान करना चाहिए। **ग्रहण** के समाप्त होने पर पुनः **स्नान** करना चाहिए। **'ग्रहण-काल' में स्नान** की सुविधा के लिए ऋषियों ने बताया है कि इस काल में सभी जल— **गङ्गा** के समान ही पवित्र हो जाता है, सभी **द्विज—व्यास** के समान पूजनीय हो जाते हैं और सभी प्रकार के **दान—मेरु-पर्वत** के समान महान् फल-दायक बन जाते हैं।

'तीर्थ-राज' प्रयाग में **'कुम्भ'-पर्व का अमृत-मय काल—'चन्द्र'-ग्रहण** से प्रारम्भ हो रहा है। इस प्रकार **गङ्गा-यमुना-सरस्वती** के पवित्र **त्रिवेणी-क्षेत्र** में **पौष पूर्णिमा—अमृत-तुल्य पर्व** है और **स्नान-पूजा-पाठ-दानादि** करने की यहाँ सभी सुविधाएँ हैं। उक्त सबके साथ **दुर्लभ ऐन्द्र-योग** के सहित **'चन्द्र-ग्रहण'** का संयोग अति महत्त्व-पूर्ण है। संक्षेप में, पुरुषार्थी जनों को **पर्व-सिद्धि-दायक सुअवसर** मिल रहा है। **'ग्रहण'** के अल्प काल में किए हुए धार्मिक कर्मों का इतना अधिक फल होता है, जो वर्षों तक लगातार किए जानेवाले अनुष्ठानों से भी नहीं मिल पाता। इसीलिए **'मन्त्र-शास्त्र'** में **'ग्रहण-पुरश्चरण'** को अन्य सभी पुरश्चरणों (अनुष्ठानों) से श्रेष्ठ बताया गया है।

* * *

'चन्द्र-ग्रहण'-रूपी अध्यात्म-विज्ञान

(परम पूज्य गुप्तावतार बाबा-श्री द्वारा विरचित रहस्योद्घाटिनी रचना के आधार पर)

[**'कौल-कल्पतरु' चण्डी,** वर्ष ५६ के **जून, २००० अङ्क** में **'ग्रहण'** से जुड़ा **'अध्यात्म'-विज्ञान** नामक निबन्ध प्रकाशित हुआ था। उस निबन्ध में **'चन्द्र-ग्रहण-पूर्णिमा'** शीर्षक के अन्तर्गत **बाबा-श्री** की रहस्योद्घाटिनी रचना प्रकाशित हुई थी। यह रचना **बाबा श्री** ने **'मुम्बई'** (महाराष्ट्र) में **'चन्द्र-ग्रहण', १३ दिसम्बर, १९२७** को लिखी थी। इसमें २१ पद्य हैं। इन पद्यों की भाषा **'गुजराती'** है, जिससे **'चन्द्र'-ग्रहण सम्बन्धी हमारे प्राचीन रहस्य-पूर्ण आध्यात्मिक भावार्थ** को समझना सबके लिए सम्भव नहीं है। अतएव हमारे आग्रह पर इस रचना का सरल भावार्थ हिन्दी में विदुषी लेखिका **'वाणी-मुक्ता' श्रीमती विद्या नागर** ने लिखने की कृपा की है। मूल कविता 'चण्डी' वर्ष ५६, अङ्क ३ — जुलाई, २००० में प्रकाशित है। आशा है कि पाठक यहाँ इस कविता के हिन्दी भावार्थ को पढ़कर **'चन्द्र-ग्रहण'-सम्बन्धी** हमारे यहाँ प्रतिष्ठित **आध्यात्मिक रहस्य** को हृदयङ्गम कर अपना **ज्ञान-वर्द्धन** करेंगे। **—सम्पादक**]

आज **'चन्द्र-ग्रहण'** है। **'पूर्ण-चन्द्र'** होने पर ही **'चन्द्र-ग्रहण'** होता है। प्रभु के प्यार में पड़ कर देखो कि पूर्णता मिल जाने पर भी ताज (मुकुट) नहीं मिल जाता। यह आज **'पूर्ण-चन्द्र'** को देखकर आभास हो रहा है। **'चन्द्र'** जब **'पूर्ण'** होता है, तब वह काफी मौज में होता है कि **'आज तो मेरे सिर पर ताज है। मैं पूर्ण हूँ—श्रेष्ठ हूँ',** किन्तु वहाँ **'पूर्णता'** कहाँ है? कल से तो फिर **एक-एक 'कला' का क्षरण** होगा! यह भान आज उसे नहीं है।

जैसे **'पुष्प'** की **'सुगन्ध'** तभी तक रहती है, जब तक उसमें **'रस'** रहता है—**'इत्र'** रहता है। जब उसका **'इत्र'** सूख जाता है—मुरझा जाता है या निकाल लिया जाता है, तब उसमें वह **'गन्ध'** नहीं होती। **'पुष्प'** की मधुर **'गन्ध'** से चित्त प्रफुल्लित होता है (जैसे **'प्रभु-स्मरण'** में जब **'आत्म-साक्षात्कार'** होता है, वह अवर्णनीय है) और जब **'आत्म-साक्षात्कार'** हो जाता है, तब वह लगन फिर छूटती नहीं (अस्त नहीं होती)। जब तक **'जीव'** में **'अपूर्णता'** है, उसे प्रत्येक सीढ़ी पर नए-नए अनुभव होते हैं। जब वह **'शून्य'** में पहुँच जाता है, तब उसे अपनी **'पूर्णता' की अनुभूति** होती है। वह **'शून्य'** ही **'पूर्णता'** है और **'पूर्णता'** ही **'प्रभु का साक्षात्कार'** है।

वहाँ छोटे-से-छोटी चीज में भी **नवीनता की अनुभूति** होती है और **'जीव'** उसे ग्रहण करता जाता है। **'भक्त'** उस **'भक्ति'** में, जो वह अनुभव करता है, एक नई **'पूर्णता'** की अनुभूति करता है। जब तक **'जीव'— 'अपूर्णता'** में डूबता-उतराता रहता है, तब तक उसे बाह्य जगत् के **सुख-दुःख, आनन्द, हताशा**—इन सबकी अनुभूतियाँ होती रहती हैं, परन्तु **'पूर्णता'** आ जाने के बाद उसे इस बात की अनुभूति होती है कि जिस **'सुख'** को मैं

'जीवन का सुख' मान रहा हूँ, वह केवल भ्रम है—एक **'भोग'** है (क्योंकि संसार में प्रत्येक **'सुख'** के मूल में **'दुःख'** है)। प्रत्येक **'जीव'** को अपने-अपने **'कर्मों'** के अनुसार ही **'जीवन'** का अनुभव होता है। एक का अनुभव दूसरे से भिन्न होता है (प्रत्येक **'जीव'— जीवन** या **'ब्रह्म'** को अपने दृष्टि-कोण से देखता है और अनुभव करता है) और अपनी **'पूर्णता'** या **'अपूर्णता'** का **'भोग'** भोगता रहता है, किन्तु जब वह **'अनन्त'** को जान लेता है, तब कोई **'भोग'** उसे भोगना नहीं होता।

जैसे **'समुद्र'** में जब अपार लहरें उठती हैं, तो वह अलग-थलग हो जाती हैं, किन्तु जब वे वापस **समुद्र** में विलीन हो जाती हैं, तब उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। केवल **समुद्र** होता है —लहरें नहीं। वैसे ही आज **'पूर्ण-चन्द्र-ग्रहण'** है। **'चन्द्रमा'** की अपनी आभा—अपना प्रकाश—सब कालिमा में परिवर्तित हो गया है! वैसे ही **'जीव'** इस **'तमो-मय' (अन्धकार-रूपी) संसार** में भटकता रहता है और अपनी **'आभा'**, जो ईश्वर उसे प्रदान करता है, उसे खो देता है, परन्तु इसी **'अन्धकार'** में यदि वह **'उपासना'—'ध्यान-योग'** करता रहता है, तो यह **'अन्धकार'** छँट जाता है और **'जीव'** **(आत्मा)** अपनी **'आभा'** —अपने **'तेज'** को वैसे ही वापस पा लेता है—जिस प्रकार **'पूर्ण-चन्द्र'** अपने क्षरण के उपरान्त वापस उस दया-मय की साधना, उपासना, ध्यान, योग आदि कर अपना प्रायश्चित्त करता है और अपने **'मन'** की शुद्धि करता है तथा पुनः अपने **'मन'** के **'ओज'** को प्राप्त कर लेता है। एक **'साधक'** के समान वह अपनी **'पूर्णता'** को पाने का सतत प्रयास करता है और वापस उसी **'पूर्णता'** के साथ **'चन्द्रमा'** अपनी **'आभा'** को बिखेरता है।

कवि की कल्पना ने **'चन्द्रमा'** को निस्तेज होते हुए देखा और फिर क्रमशः धीरे-धीरे उस कालिमा से निकल कर **प्रकाश-मय** होते हुए भी देखा।

अपने **'अन्तर-मन'** में ही **'जीवात्मा'** को वह **'प्रकाश'** ढूँढ़ना है, जो **'आत्मा-रूपी ब्रह्म'** स्वयं में निवास कर रहा है, परन्तु **'जीव'** तो बस! इस असार संसार में स्वयं ही **'ग्रसित'** होता रहता है। जिस प्रकार **'चन्द्र-ग्रहण'** में **'चन्द्र'** कालिमा-मय हो जाता है और उसकी अपनी **'आभा'** विलुप्त हो जाती है, उसी प्रकार **'जीव'** भी **काम, क्रोध, लोभ, मोह** आदि में फँस कर अपने **'आत्म-तत्त्व'** को भूल जाता है। प्रत्येक **'जीवात्मा'** के **'चित्त-आरसी'** को **'मोह'—मल-रूपी कालिमा** उसी प्रकार से ग्रस लेती है, जिस प्रकार कहा जाता है कि **'ग्रहण-काल'** में **'राहु'— चन्द्रमा को ग्रसता है।**

प्रभु (बाबाश्री) ने अपने 'भजन' में **'जीवात्मा'** (अपने भक्तों) को यह उपदेश दिया है कि **सतत 'उपासना'** करते रहो, जिससे तुम्हारे **'मन'** को **मल-रूपी 'कालिमा' (राहु)** ग्रस न सके और **'पूर्ण-चन्द्र'** की तरह अपने **'आत्म-तत्त्व'** को पहचानो—अपने **'इष्ट'** की **'उपासना'** करते सदा चमकते रहो।

* * *

'कुम्भ'-पर्व की महा-पौष-पूर्णिमा

'महा-पौष-पूर्णिमा' (६ जनवरी, २००१)— **'कुम्भ'-पर्व** की पहली प्रमुख तिथि है। इस तिथि का महत्त्व समझने के लिए कुछ शब्दों के अर्थ पर विचार करने की आवश्यकता है। **'पूर्णिमा'** —शब्द का अर्थ क्या है? सामान्यतः यह शुक्ल पक्ष की अन्तिम तिथि का नाम है किन्तु अर्थ पर ध्यान दें, तो ज्ञात होगा कि **'मा'** अक्षर का अर्थ है—**'चन्द्रमा'**। अतः जिस दिन **पूर्ण चन्द्र** दिखाई दे, उस दिन को **'पूर्णिमा'** की पवित्र तिथि होती है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष का अन्तिम दिन **'अमा'**-नाम से विख्यात है क्योंकि उस दिन **'मा'** अर्थात् चन्द्रमा **'अ'** अर्थात् नहीं रहता। सभी जानते हैं कि **अमावास्या तिथि** में आकाश में चन्द्रमा का अभाव हो जाता है। इन दोनों ही तिथियों में सारे वातावरण में एक विशेष स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस विशेष स्थिति का चिन्तन कर किए जानेवाले कार्यों का विशेष फल होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि ऋषियों द्वारा यह बताया गया है कि **'पूर्णिमा'-तिथि** के समय **दान** और **उपवास** आदि आध्यात्मिक कर्म करने से अक्षय फल मिलता है।

'पूर्णिमा' की तिथि प्रत्येक मास में पड़ती है। यहाँ **'मास'**-शब्द पर भी ध्यान देना उचित होगा। संस्कृत धातु **'मास'** का अर्थ भी **'चन्द्र'** है। इससे स्पष्ट है कि चैत्र, वैशाख आदि बारह मास चन्द्रमा की दशाओं से ही सम्बन्धित हैं। इस प्रकार १२ मासों में १२ ही **पूर्णिमाएँ** होती है, जो धार्मिक कार्यों के लिए उपयोगी मानी गई हैं। निरन्तर शोध के बाद हमारे यहाँ यह भी निर्णय किया गया है कि जब **'चन्द्र'** एवं **'बृहस्पति'** एक ही नक्षत्र में हों और तब **पूर्णिमा** हो, तो उस **पूर्णिमा** को **'महा'** कहा जाता है। ऐसी **'महा-पूर्णिमा'— सामान्य पूर्णिमा** की अपेक्षा कहीं अधिक फल-दायिनी होती है। जो आध्यात्मिक कर्म **महा-पूर्णिमा** के समय किए जाते हैं, उनके अभूत-पूर्व फल की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

सामान्यतः सभी पूर्णिमाओं में जानकार लोग धूप, दीप, पुष्प, फल, चन्दन, नैवद्यादि से **पार्वती उमा की पूजा** करते हैं। उस दिन उपवास रखा जाता है और केवल एक बार रात्रि में भोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त अपने **कुल की परम्परा** या **गुरुओं द्वारा बताए गए विधान** के अनुसार **विशेष आध्यात्मिक कर्म** भी इस पवित्र अवसर पर किए जाते हैं क्योंकि अन्य दिनों की अपेक्षा इस तिथि में किए गए कर्मों का फल शीघ्र एवं अधिक मिलता है। अतः जब कभी **'महा-पूर्णिमा' का दुर्लभ अवसर** आता है, तो **आत्म-कल्याण** चाहनेवाले लोग और भी अधिक सावधान होकर **आध्यात्मिक कर्म** करने में तत्पर होते हैं।

वर्ष के १२ मासों में **'पौष'-मास** का अपना विशेष महत्व है क्योंकि इसी मास से **दक्षिणायन की समाप्ति** होकर **उत्तरायण का प्रारम्भ** होता है। **उत्तरायण का महत्त्व** कितना अधिक है, यह **सर्व-पूज्य भीष्म पितामह** के दृष्टान्त से प्रायः सभी भारतीयों को ज्ञात है। बाणों की

शय्या पर पड़े हुए **रक्त-रञ्जित महा-पुरुष भीष्म** ने तब तक अपने प्राणों को रोके रखा, जब तक कि **उत्तरायण का शुभ काल** नहीं आया। यही नहीं, **तन्त्र-शास्त्र** के मर्मज्ञों के अनुसार **पौष मास** का शुक्ल पक्ष-**"गुप्त नवरात्र"** का काल है, जो **परम सिद्धि-दायक** है। इसके अतिरिक्त **पौष मास** का नामकरण **'पुष्य'-नक्षत्र** के आधार पर हुआ है। **'पुष्य'-नक्षत्र** के स्वामी **देव-गुरु बृहस्पति** हैं। अतः **पूरा पौष मास देवोपासना के लिए अति फल-प्रद** है। विशेष कर **'शुक्ल पक्ष'** और **'कुम्भ'-पर्व** की तो **'महा-पौषी'-पूर्णिमा** कितनी फल-दायिनी हो सकती है, यह इस संक्षिप्त विवेचना से स्पष्ट है।

यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है। वह यह है कि **पौष पूर्णिमा** से ही अति पावन **'माघ'-स्नान का श्रीगणेश** होता है। प्रायः सभी पञ्चाङ्गों में लिखा मिलता है कि **'पौष'-पूर्णिमा** के दिन ही **'माघ'-स्नान का सङ्कल्प** करना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो मन्त्र पठनीय है, वह यहाँ लिखना उचित ही होगा—

दुःख-दारिद्र्य-नाशाय, श्रीविष्णोस्तोषणाय च। प्रातः-स्नानं करोम्यद्य, माघे पाप-विनाशने।।

अर्थात् दुःखों और दरिद्रता (निर्धनता) को नष्ट करने के लिए और भगवान् श्री विष्णु की प्रसन्नता के लिए आज मैं प्रातः-काल स्नान करता हूँ क्योंकि माघ में स्नान करने से पापों का नाश होता है।

मकरस्थे रवौ माघे, गोविन्दाच्युत-माधव! स्नानेनानेव मे देवं, यथोक्त फलदो भव।।

अर्थात् माघ मास में जब सूर्य मकर राशि में स्थित होते हैं, उस समय इस स्नान के द्वारा हे भगवन् गोविन्द अच्युत माधव! मुझे वही फल आप प्रदान करें, जैसा कि कहा गया है।

शास्त्रों में ऋषियों द्वारा बताया गया है कि उक्त प्रकार **'पौष पूर्णिमा'** के दिन समुद्र में या **काशी-प्रयाग** जैसे तीर्थों में स्नान कर **'माघ'-स्नान हेतु सङ्कल्प** करने से पूर्व-कृत दुष्कर्मों के पापों का निवारण होता है और स्नान करनेवाले को सभी प्रकार का सुख मिलता है।

'पौष पूर्णिमा' के ही दिन **भगवती दुर्गा के 'शाकम्भरी'-स्वरूप का आविर्भाव** हुआ था। **'शाकम्भरी'-जयन्ती** का दिवस होने से इस पर्व की पवित्रता और भी बढ़ जाती है।

'तीर्थ-राज' प्रयाग के **त्रिवेणी-सङ्गम** के पवित्र वातावरण में निवास करते हुए **'पौष पूर्णिमा'** के **'महा-पर्व'-काल में स्नान** करना निस्सन्देह अमोघ फल-दायक तो है ही, जो इस रहस्य को न जानते हुए भी इस अवसर पर वहाँ पहुँच जाते हैं, वे लाखों-करोड़ों लोगों को श्रद्धा-पूर्वक, कठिन शीत की उपेक्षा करते हुए, जब शीतल जल में बारम्बार डुबकी लगाते देखते हैं, तो उनके मन का भी कलुष धुल जाता है।

* * *

मकर-संक्रान्ति की महिमा

'मकर'-संक्रान्ति-पर्व (माघ कृष्णा पञ्चमी रविवार 'विजय' सं० २०५७ वि०, १४ जनवरी, २००१) भारतीय ऋषियों द्वारा **महान् पुण्य-दायक** बताया गया है। करोड़ों भारतीय इस **'पर्व-काल'** में यथा-शक्ति पवित्र जल में स्नान कर पूजा-पाठ, यज्ञ-यागादि कर दान-दक्षिणा प्रदान कर अपने को कृतार्थ करते हैं।

'मकर-संक्रान्ति'-पर्व के नाम में दो शब्द हैं— (१) **मकर** और (२) **संक्रान्ति। 'मकर'**-नाम है— एक **'राशि'** का। **'राशि'** क्या है? इसे समझने के लिए यह जानना चाहिए कि पृथ्वी— सूर्य के चारों ओर घूमती रहती है। उसकी इस परिक्रमा के मार्ग को बारह भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक भाग की पहचान तारों के विभिन्न प्रकार के समूहों से की जाती है। तारों के इसी समूह को **'राशि'** कहते हैं। तारों का समूह जिस प्रकार की आकृति बनाते हैं, उसी के अनुरूप **'राशि'** का नाम रख दिया गया। पृथ्वी के समान ही आकाश के ३६० अंश हैं, जिनके उक्त १२ भाग करने से प्रत्येक भाग ३० अंश का होता है। ३०-३० अंशोंवाले ये भाग ही **१२ राशियाँ** हैं—

(१) **मेष**, (२) **वृषभ**, (३) **मिथुन**, (४) **कर्क**, (५) **सिंह**, (६) **कन्या**, (७) **तुला**, (८) **वृश्चिक**, (९) **धनु**, (१०) **मकर**, (११) **कुम्भ और** (१२) **मीन।**

इस प्रकार **काल-पुरुष के १०वें अङ्ग की सूचक—'मकर'-राशि** है। इस **'मकर'-राशि** का अधिपति ग्रह—**'शनि'** है, जो मन्द गति से चलता है। इसके सिवा यह राशि **'पृथ्वी'-तत्त्व** की है। **माघ मास** में यह राशि **'शून्य'-रूपा** होती है। इस राशि का रत्न नीलम और धातु सोना है। इस संक्षिप्त विवरण से **'मकर'-राशि की गरिमा** का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

'संक्रान्ति'-शब्द का अर्थ है— सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना। जिस राशि में सूर्य प्रवेश करता है, उसी राशि के नाम से वह संक्रमण प्रसिद्ध होता है। अतः जब सूर्य **'धनु'**-राशि को छोड़कर **'मकर'**-राशि में प्रवेश करता है, तो वह काल **'मकर-संक्रान्ति'** के नाम से प्रसिद्ध होता है। इस संक्रान्ति की विशेषता यह है कि इसी दिन से **'उत्तरायण' का प्रारम्भ** होता है। इस प्रकार दो **अयन-संक्रान्तियों** में से यह प्रमुख है, क्योंकि वर्ष का **'उत्तरायण'-काल** सभी प्रकार के शुभ कर्मों के लिए प्रशस्त है। दूसरी **'अयन-संक्रान्ति'** है— **'कर्कट'-संक्रान्ति**, जब **'दक्षिणायन'** का प्रारम्भ होता है।

'संक्रान्ति' की महिमा इसलिए भी है क्योंकि इसे साक्षात् **'दुर्गा'-स्वरूपा** अर्थात् **'शक्ति'-रूपा** माना गया है। इसकी अवधि में किए गए प्रत्येक कर्म का **कोटि-गुना फल** होता है। धर्म-कर्मों से **आयु, ऐश्वर्य, सन्तान आदि सुखों की वृद्धि** होती है। अतः **'संक्रान्ति'-काल** में धार्मिक कर्मों के करने का विशेष महत्त्व है।

'मकर' अर्थात् **मगर** या **घड़ियाल** एक जल-चर प्राणी है, जिसे स्थापत्य एवं मूर्ति-कला में श‍ृङ्गार का एक साधन माना गया है। **'यजुर्वेद'-संहिता** में उल्लिखित बलि-पशुओं में **'मकर'** की

भी गणना की गई है। यह **'काम'** का प्रतीक है, इसी से **'काम-देव'** को **'मकर-ध्वज'** कहा जाता है। साथ ही **सुर-सरि गङ्गा देवी का वाहन** भी **'मकर'** ही है। इन सब लक्षणों से युक्त **'मकर'-राशि की गरिमा** को सहज ही समझा जा सकता है। ऐसी राशि में **भगवान् सूर्य** के प्रवेश करने से कितने **पवित्र काल की प्रस्तुति** हो सकती है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है।

गङ्गा-वाहन 'मकर' के स्वरूपवाली राशि के **सूर्य से संक्रान्त** होने के समय **गङ्गा में स्नान कर धर्म-कर्म करने का फल कोटि-गुणा** जो बताया गया है, उसकी पुष्टि उक्त तथ्यों से भली प्रकार हो जाती है। **गङ्गा-यमुना-सरस्वती** के **त्रिवेणी-सङ्गम** में स्नान करने का फल तब कितना अमोघ और अनन्त हो सकता है, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि प्रति वर्ष **मकर-संक्रान्ति** के पुण्य काल में लाखों की संख्या में देश के कोने-कोने से लोग **'तीर्थ-राज' प्रयाग में आकर 'त्रिवेणी-सङ्गम' में स्नान कर धर्म-कर्म** किया करते हैं। **'कुम्भ-पर्व' की 'मकर-संक्रान्ति'** के पुण्य काल की महिमा सामान्य वर्षों की **संक्रान्ति** से कहीं अधिक बढ़ जाती है, यह बात भी सहज ही समझी जा सकती है।

'संक्रान्तियाँ'— राशियों के अनुसार बारह होती हैं, जिन्हें चार वर्गों में बाँटा गया है। दो तो **'अयन'-संक्रान्तियाँ** हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दो **'विषुव'-संक्रान्तियाँ** होती हैं अर्थात् **'मेष'-राशि** और **'तुला'-राशि** की संक्रान्तियाँ, जब दिन और रात की अवधि बराबर होती है। इसी प्रकार **मिथुन, तुला, धनु** और **मीन राशि** की **चार संक्रान्तियों** को **'षडशीति-मुख'** कहा गया है। चौथे वर्ग में **वृषभ, सिंह, वृश्चिक** और **कुम्भ-राशियों की संक्रान्तियाँ— 'विष्णु-पद'** नाम से प्रसिद्ध हैं। इन **१२ संक्रान्तियों** में से प्रत्येक संक्रान्ति में **गङ्गा** आदि पवित्र नदियों में स्नान कर **धार्मिक कर्म** करने से विशेष फल की प्राप्ति होती है।

उक्त **संक्रान्तियाँ** जब किसी **शुभ दिन** या किसी **विशेष नक्षत्र** से संयुक्त होती हैं, तो उनकी विशेषता में और भी वृद्धि हो जाती है। भारतीय ऋषियों ने इस विशेषता को सूचित करने के लिए उनके अलग-अलग नाम निर्दिष्ट किए हैं। उदाहरण के लिए **मेष** या **कर्क** या **मकर-संक्रान्तियाँ** जब **रविवार** को पड़ती हैं, तब उनका नाम **'घोरा'** होता है और यह **संक्रान्ति** शूद्रों के लिए विशेष हितकर होती है।

इसी प्रकार **सोमवार** की **संक्रान्ति—'ध्वाक्षी', मङ्गल** की **'महोदरी', 'बुध'** की **'मन्दाकिनी', 'बृहस्पति'** की **'मन्दा', शुक्र** की **'मिश्रिता'** और **'शनि'** की संक्रान्ति **'राक्षसी'** कहलाती है। इस सम्बन्ध का सारा विवरण यदि लिखा जाए, तो आश्चर्य होगा कि भारतीय ऋषियों ने कितनी सूक्ष्मता से **'काल'** के एक-एक क्षण पर विचार कर **पर्वों का निर्धारण** किया है। ऐसी दशा में सामान्य भारतीय जन यदि उन पर्वों को आँख मूँद कर बिना विशेष तथ्यों को जाने-समझे ही मानते आ रहे हैं, तो उचित ही है।

'मकर-संक्रान्ति' के समय अथवा किसी भी अन्य **संक्रान्ति** के समय सूर्य के प्रवेश करने का समय इतनी कम अवधि का होता है कि उस अवधि के काल में **संक्रान्ति** के लिए निर्दिष्ट कर्मों को कर पाना सम्भव नहीं है। इस तथ्य पर भी ऋषियों ने विचार किया है और तदनुसार उन्होंने यह नियम बनाने की दूर-दर्शिता दिखाई है कि वास्तविक

'संक्रान्ति'-काल के जितने ही समीप निर्दिष्ट कर्म कर लिए जाएँ, उतना ही अधिक पुण्य मिलता है। इसी नियम के अनुसार **संक्रान्तियों में पुण्य-दायक काल के सात विभाग** बताए गए हैं अर्थात् **राशि में सूर्य के प्रवेश-काल** से लेकर ३,४,५,७,८,९ या १२ घटिकाओं की अवधि में **धार्मिक कृत्य** कर लेने से **संक्रान्ति-काल का पुण्य फल** मिल जाता है। **'मकर'-संक्रान्ति** के अवसर पर **तीन दिन** का या **एक दिन का उपवास** करना चाहिए। जो व्यक्ति तीन दिनों तक **उपवास** करता है और उसके बाद **स्नान कर उत्तरायण में सूर्य की पूजा** करता है, उसकी **सभी मनोकामनाएँ पूर्ण** होती हैं। **'अयन'-संक्रान्ति** के पुण्य काल में जो **दान-कर्म** किया जाता है अर्थात् निर्धन व्यक्तियों, सुपात्र लोगों, कन्याओं, बालकों आदि को अन्न, वस्त्र, धन, दूध देनेवाली गायों आदि का दान करने से कोटि गुना फल दान-दाता को मिलता है। यही **'मकर'-संक्रान्ति-काल की विशेषता** है और इसी से श्रद्धावान् विश्वासी लोग इसी काल के लिए तैयारी करते रहते हैं और दूरस्थ होते हुए भी **तीर्थ-राज प्रयाग** जैसे पुण्य क्षेत्रों में आकर इस **दुर्लभ-काल का सदुपयोग** कर अपने जीवन को सार्थक करते हैं।

'संक्रान्ति'-काल में पितरों का श्राद्ध करना या अन्य प्रकार के **यज्ञ, जप आदि अनुष्ठानों** का विशेष रूप से फल मिलता है। अतः इस प्रकार के **धार्मिक कृत्य** भी लोग किया करते हैं। वस्तुओं में **तिल** का विशेष महत्त्व है, क्योंकि ऋषियों ने इस काल में यह निर्दिष्ट कर रखा है कि जो व्यक्ति **तिल** का प्रयोग ६ प्रकार से करता है, वह सब प्रकार से सम्पन्न और सुखी होता है। **तिल** के ६ प्रयोग हैं— **१. शरीर को तिल से नहलाना, २. तिल का उबटन लगाना, ३ तिल-युक्त जल पितरों को देना, ४. अग्नि में तिल से होम करना, ५. तिल का दान करना** और **६ तिल खाना।** प्राचीन परम्परा को जानने-माननेवाले इसी से **'मकर'-संक्रान्ति** के पुण्य काल में **तिल का प्रयोग** यथा- सम्भव अवश्य करते हैं।

जैसा कि पहले बता आए हैं, **'संक्रान्ति'** को **'देवी'-स्वरूपा** माना गया है। **'मकर-संक्रान्ति'** भी **देवी-स्वरूप में हाथी पर आसीना** ध्यान की जाती है। **काले, श्वेत** और **लाल आदि रङ्गों के वस्त्रों** से वह सुसज्जित है। हाथों में **धनुष** और **शूल** धारण करती है। गोरोचन का तिलक लगाती है। उसका **अधरोष्ठ झुका हुआ** है, **नासिका लम्बी** है। इसी प्रकार उसके स्वरूप का विविध वर्णन धर्म-शास्त्रों में मिलता है।

अन्त में **'मत्स्य'-पुराण** के अनुसार **'मकर'-संक्रान्ति** के पुण्य काल की जो **सरल कर्म-विधि** बताई गई है, उसका उल्लेख करना उचित होगा— ■ **(१) संक्रान्ति के पूर्व दिन केवल एक बार दोपहर में भोजन करें।** ■ **(२) संक्रान्ति के दिन प्रातः-काल दाँतों को शुद्ध कर तिल-मिश्रित जल में स्नान करें। फिर किसी योग्य व्यक्ति को तीन पात्रों में भरकर भोजन-सामग्री का दान करें। सम्भव हो, तो यमराज, रुद्र-देव और धर्मराज की प्रसन्नता के लिए एक गाय का दान करें। धनी व्यक्तियों को वस्त्र-आभूषण और स्वर्ण-घट आदि का दान करना चाहिए। निर्धन व्यक्तियों के लिए केवल फलों का दान करना ही पर्याप्त होता है।** इस **पर्व-काल में दूसरो को भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करना चाहिए।**

* * *

'मौनी अमावास्या'—एक दुर्लभ तिथि

भारतीय ऋषियों द्वारा प्रत्येक **'पर्व'-तिथि का नाम** बड़ी सूझ-बूझ के साथ रखा गया है। **देव-भाषा संस्कृत** की यह अपनी विशेषता है कि उसके एक-एक अक्षर का अपना अर्थ है और इन सार्थक अक्षरों से बननेवाला शब्द गूढ़ अर्थों का बोधक बन जाता है। **'मौनी अमावास्या'-तिथि की महिमा** उसके नामार्थ पर विचार करने से सहज ही ज्ञात हो जाती है।

सबसे पहले **'मौनी'**-शब्द पर विचार करें। **'म'**-अक्षर **वाणी** का द्योतक है और **'न'** का अर्थ है —नहीं। इस प्रकार जब वाणी न हो अर्थात् बोला न जाए, तो वह अवस्था **'मौन'** कहलाती है। **'मौन'** अर्थात् चुप रहने से **मन की एकाग्रता** सहज ही हो जाती है। इसी से **योग** और **उपासना** आदि में **'मौन'** रहना बड़ा महत्त्व-पूर्ण माना गया है। यहाँ तक कि ऋषियों द्वारा **'मौन'-व्रत** का विधान ही निर्दिष्ट कर दिया गया। इस **'व्रत'** का अभ्यास आठ, छह या तीन मास तक अथवा एक मास, आधा मास या १२, ६, ३ अथवा एक ही दिन तक करने का नियम है, जिससे जितना हो सके। ऋषियों ने अपने अनुभव से बताया है कि **'मौन व्रत'** का पालन करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं—**'मौनं सर्वार्थ-साधनम्।'**

'मौन' व्रत करनेवाले को मन से, वचन से और कर्म से सर्वथा **अहिंसक** बनना पड़ता है अर्थात् उसे इस प्रकार रहना पड़ता है कि किसी को भी कोई कष्ट न पहुँचे। **'व्रत'-काल** में उसे अपने दाहिने हाथ में **दूर्वाङ्कुरों** (दूब घास) को **१६ गाँठें** लगाकर रखना होता है। स्त्रियाँ बाँएँ हाथ में रखती हैं। कोई भी कार्य क्यों न करना पड़े, बिना कोई शब्द किए—**मौन** रहते हुए ही उसे करना होता है। **'मौन'-काल** में **भगवान् शिव के ध्यान, पूजन-अर्चन** का विधान है अथवा जो जिस **देवता का उपासक** हो, वह उसकी उपासना करता है। इस प्रकार **'मौन'-व्रत** का पालन करते हुए जो उपासना करता है, वह सभी प्रकार के भौतिक सुखों को पाकर अन्त में **'मोक्ष'** प्राप्त कर लेता है।

अब विचार करें **'अमावास्या'**-शब्द पर। यह **कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथि** का नाम है। इस नाम का शब्दार्थ है— **'अमा सह वसतः चन्द्रार्कौ, अस्यां सा'** अर्थात् वह तिथि, जिसमें **'चन्द्र'** और **'सूर्य'** दोनों एक साथ रहते हैं। दूसरे शब्दों में **'सूर्य'** और **'चन्द्रमा'** का जो परस्पर मिलन होता है, उसे **'अमावास्या'** कहते हैं। इस नामार्थ से स्पष्ट है कि यह तिथि कितनी विलक्षण है। इसका एक नाम **'सूर्य-चन्द्र-सङ्गम'** भी है। इस प्रकार **'गङ्गा-यमुना-सरस्वती'** के **त्रिवेणी-सङ्गम** के निकट इस **अमावास्या की तिथि का काल** कितना अभूत-पूर्व हो सकता है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। योगियों में प्रसिद्ध **इड़ा-पिङ्गला नाड़ियाँ—'चन्द्र-सूर्य'** की द्योतक हैं, साथ ही **गङ्गा-यमुना** की भी बोधक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि **'अमावास्या'-तिथि—'सूर्य-चन्द्र-मिलन', 'इड़ा-पिङ्गला'** या **'गङ्गा-यमुना' के सङ्गम** जैसी स्फूर्ति-दायिनी है।

'अमावास्या'-शब्द का प्रथम पद **'अमा'**—चन्द्र-मण्डल की **१६वीं कला** का नाम है। ऋषियों द्वारा उसकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है—

अमा षोडश-भागेन, देवि! प्रोक्ता महा-कला। संस्थिता परमा माया, देहिनां देह-धारिणी।।

अर्थात् हे देवि! चन्द्रमा की सोलह कलाओं से युक्त आधार-शक्ति-रूपा, क्षय और उदय से रहिता **'अमा'—'महा-कला'** है, जो **परमा माया** के समान विराजमान होकर सभी प्राणियों की देह को धारण करती है।

'अमावास्या' के अनेक नाम हैं। यथा— **पञ्च-दशी, अमा-वसी, अमा-मसी अमा-मासी, दर्श** इत्यादि। जिस **'अमावास्या'**-तिथि में **'चन्द्र'-कला** दिखाई देती है, उसे **'सिनीवाली'** और जिसमें यह दिखाई नहीं पड़ती, उसे **'कुहू'** कहते हैं। इस सबसे प्रकट है कि **'अमावास्या'**-शब्द कितने गूढ़ और व्यापक अर्थों से भरा हुआ है।

पूरे वर्ष में **१२ मास** होते हैं और **बारह ही अमावास्याएँ** पड़ती हैं। ये सभी **पुण्य-दायक काल की उपलब्धि** कराती हैं। इससे ऋषियों द्वारा निर्देश किया गया है कि प्रत्येक **'अमावास्या'**-तिथि में यथा-शक्ति **व्रत के नियमों का पालन** करना चाहिए।

प्रातः-काल, मध्याह्न-काल, सायं-काल, मध्य रात्रि-काल, ब्राह्म मुहूर्त-काल और **उषा-काल** जैसे काल-खण्डों की अपनी-अपनी विशेषता है। इसी प्रकार सप्ताह के प्रत्येक **दिवस,** वर्ष के प्रत्येक **मास** और प्रत्येक **वर्ष** के काल-खण्ड का भी अपना-अपना महत्त्व है। **काल** की इस महिमा को देखते हुए बारह वर्षों बाद **'तीर्थ-राज' प्रयाग** के **गङ्गा-यमुना-सरस्वती** के **त्रिवेणी-सङ्गम-क्षेत्र** में **माघ मास** में पड़नेवाले **कुम्भ-पर्व** के सन्दर्भ में **'मौनी अमावास्या'** के मुख्य पर्व की गरिमा को समझना किसी के लिए कठिन नहीं है।

'पत्रा'-नाम से प्रख्यात **भारतीय पञ्चाङ्ग** या **'तिथि'-पत्र** को देखनेवाले यह सहज ही जानते हैं कि **२४ जनवरी,** २००१ को पड़नेवाली उक्त **दुर्लभ अमावास्या** के दिन **स्नान, दान, श्राद्ध** आदि कर्मों के करने से क्या लाभ होते हैं। ऋषियों ने लिखा है कि—

प्रयागे माघ-मासे तु, त्र्यह-स्नानस्य यत्-फलम्। अश्व-मेध-सहस्रेण, तत्-फलं लभते भुवि।।

अर्थात् माघ मास में प्रयाग-राज में जो तीन दिन स्नान कर लेता है, उसे एक सहस्र अश्व-मेध यज्ञों के करने के बराबर पुण्य मिलता है।

'माघ'-मास में किन नियमों का पालन करना चाहिए, इसे भी ऋषियों ने थोड़े से शब्दों में बताया है— भूमि पर सोए और घृत-युक्त तिलों से हवन करे, तो सभी कामनाएँ पूर्ण होकर परम सुख की उपलब्धि होती है। जो पूरे **'माघ मास'** तक नियम पालन करते हुए न रह सके, वह केवल तीन दिन ही ऐसा करके लाभ उठा सकता है और जिसके लिए तीन दिन भी ऐसा करना सम्भव न हो, वह केवल एक दिन अर्थात् **'मौनी अमावास्या'** के दिन **'व्रत'**-साधन कर अपने जीवन को सार्थक कर सकता है।

* * *

'कुम्भ'-पर्व की बसन्त-पञ्चमी की महिमा

'तीर्थ-राज' प्रयाग के विश्व-विख्यात **'कुम्भ'-पर्व** के पवित्र पर्व-काल में **'बसन्त-पञ्चमी'** का अपना अनूठा महत्त्व है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि इस दिन **ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी भगवती सरस्वती की पूजा का विधान** ऋषियों ने रखा है, अपितु अन्य अनेक रहस्य-पूर्ण बातें हैं, वास्तव में **माघ मास** के **शुक्ल पक्ष** की **पञ्चमी-तिथि— 'बसन्त-पञ्चमी'** के नाम से प्रसिद्ध है, जो इस वर्ष **सोमवार २६ जनवरी, २००१** के दिन पड़ रही है, जबकि **'प्रयाग-राज'** में अमृत के समान पुण्य-फल-दायक **'कुम्भ'-पर्व** का अभूत-पूर्व समारोह सम्पन्न होगा।

बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि **माघ मास** के **शुक्ल पक्ष** में ही **'गुप्त नवरात्र'** का **'सर्व-सिद्धि'-दायक पर्व** मनाया जाता है। **चैत्र मास** का **'वासन्तिक नवरात्र'** और **आश्विन मास** का **'शारदीय नवरात्र'** तो **'चण्डी-पाठ'** या **'दुर्गा-पूजा'** के कारण प्रायः सभी धर्म-प्रेमियों को ज्ञात हैं, किन्तु **आषाढ़** और **माघ शुक्ल पक्षों में मनाए जानेवाले 'गुप्त नवरात्र'-काल** को केवल आध्यात्मिक साधना में रुचि रखनेवाले ही जानते हैं। **'नव-रात्र'** का महत्त्व उसकी परिभाषा से ही स्पष्ट है— **'नव-शक्तिभिः संयुक्तं नवरात्रं उच्यते।'**

अर्थात् **नौ शक्तियों** से युक्त होने के कारण **'नव-रात्र'** नाम कहा जाता है। **'गुप्त नव-रात्र'** अधिक **शक्ति-दायक काल** है क्योंकि इन दिनों में लोग चुपचाप आध्यात्मिक साधना करते हैं, कोई उसके विषय में जान नहीं पाता। **गुप्त साधना का महत्त्व** इसी बात से समझा जा सकता है कि जितने भी भौतिक विज्ञान के आविष्कार हुए हैं, उनके आविष्कर्ताओं ने उन्हें गुप्त रूप से **सतत अनुसन्धान** द्वारा ही करने में सफलता पाई है। **आणविक शक्ति** के जितने प्रयोग आज देश-विदेश में हो रहे हैं, वे सभी गोपनीयता में ही हो रहे हैं। जब **भौतिक विज्ञान** में **गुप्त भाव** को इतनी मान्यता प्राप्त है, तो **आध्यात्मिक विज्ञान** में उसकी महत्ता स्पष्ट ही है। ऐसी दशा में **माघ मास** के **शुक्ल पक्ष** में पड़नेवाले **'गुप्त नवरात्र' की महिमा** को कोई भी सहज ही समझ सकता है।

माघ मास के उक्त **गुप्त नवरात्र** की **'पञ्चमी'-तिथि की विशेषता** यह है कि इसी पवित्र तिथि के दिन **वाक्-शक्ति की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का आविर्भाव** हुआ था। भारतीय पञ्चाङ्गों अर्थात् कैलेण्डरों में जो **'पत्रा'**-नाम से प्रसिद्ध हैं, इस तिथि के सामने स्पष्ट लिखा है—**'वागीश्वरी जयन्ती'**। **'वागीश्वरी'**-नाम—**सरस्वती देवी** का ही है। यही कारण है कि इस दिन **भगवती सरस्वती की आराधना** विशेष रूप से की जाती है। सारे भारत में प्रति वर्ष **माघ शुक्ला पञ्चमी** को यह **'सरस्वती'-पूजा** होती ही है, किन्तु **'कुम्भ' के दुर्लभ पर्व-काल** में इस **पूजा की गरिमा** कितनी बढ़ जाती है, इसे अनुभव करना कठिन नहीं है।

'बसन्त-पञ्चमी' नाम से इस पुण्य तिथि का प्रसिद्ध होना भी रहस्य-पूर्ण है क्योंकि **माघ मास** में तो **शिशिर ऋतु** रहती है, फिर **बसन्त** शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है? यहाँ

यह उल्लेखनीय है कि जलवायु के अनुसार पूरे वर्ष को दो-दो मास की छह ऋतुओं में विभाजित किया गया है। यथा— (१) चैत्र - वैशाख में **बसन्त ऋतु,** (२) ज्येष्ठ - आषाढ़ में **ग्रीष्म ऋतु,** (३) श्रावण - भाद्रपद में **वर्षा ऋतु,** (४) आश्विन-कार्तिक में **शरद् ऋतु,** (५) मार्गशीर्ष-पौष में **हेमन्त ऋतु** और (६) माघ-फाल्गुन में **शिशिर ऋतु।**

इस प्रकार **माघ मास** के **शुक्ल पक्ष** में ऋतु तो **शिशिर** ही रहती है। यही कारण है कि **'बसन्तोत्सव'** का समय **चैत्र कृष्णा प्रतिपदा** के दिन निर्धारित किया गया है। तथापि यहाँ यह विचारणीय है कि ये ऋतुएँ परस्पर मिलती हुई ही गतिमान होती हैं। इसे संक्षेप में इस तथ्य से समझा जा सकता है कि ये छहों ऋतुएँ प्रति-दिन दो-दो घण्टे विद्यमान रहती हैं। अतः **शिशिर ऋतु** के **काल में बसन्त की अनुभूति** का होना स्वाभाविक ही है। इसी अनुभूति के आधार पर **माघ शुक्ला पञ्चमी** का नाम—**'बसन्त-पञ्चमी'** पड़ा है।

'बसन्त-पञ्चमी' के दिन **भगवती सरस्वती के पूजन** का एक ऐतिहासिक आधार भी है। वैदिक काल में वेदों के अध्ययन का सत्र **श्रावणी पूर्णिमा** से प्रारम्भ होकर इसी **माघ शुक्ला पञ्चमी** को पूर्ण होता था और इसी के उपलक्ष्य में **सरस्वती देवी की पूजा** हुआ करती थी। वही परम्परा आज तक निर्बाध रूप से इस देश में निरन्तर चली आ रही है।

प्रत्येक पक्ष में **पन्द्रह तिथियाँ** होती हैं। कृष्ण पक्ष की १५वीं तिथि का नाम है **अमावास्या,** तो शुक्ल पक्ष की अन्तिम तिथि **पूर्णमासी** या **पूर्णिमा** कहलाती है। शेष चौदह तिथियों के नाम दोनों पक्षों में समान हैं। यथा **प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया** आदि। प्रत्येक तिथि के **स्वामी** या **अधिष्ठातृ देवता** निश्चित हैं और उन्हीं देवताओं को ध्यान में रखते हुए उस **'तिथि'**-काल में उचित कार्य करने से **अभीष्ट फल की प्राप्ति** होती है। क्रमशः इन देवताओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

प्रतिपदा, द्वितीया—**ब्रह्मा,** तृतीया—**विष्णु,** चतुर्थी—**यम,** पञ्चमी—**चन्द्र,** षष्ठी —**कार्तिकेय,** सप्तमी—**इन्द्र,** अष्टमी—**वसु,** नवमी—**नाग,** दशमी—**धर्म,** एकादशी—**शिव,** द्वादशी—**सूर्य,** त्रयोदशी—**कामदेव,** चतुर्दशी—**कलि,** पूर्णिमा —**विश्वेदेव** और अमावास्या—**पितृ-गण।**

उक्त विवरण के अनुसार **पञ्चमी तिथि** के अधिष्ठातृ देवता **'चन्द्र'** हैं। **'चन्द्र'** या **'सोम'** अमृत-दाता हैं। इस प्रकार **पञ्चमी तिथि** में शुभ कर्म करने से स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति सहज रूप से होती है, यह निष्कर्ष कोई भी निकाल सकता है। एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार **प्रतिपदा, षष्ठी** और **एकादशी** तिथियाँ— **'नन्दा', चतुर्थी, नवमी** और चतुर्दशी—**'रिक्ता'** तथा **पञ्चमी, दशमी** और **पूर्णिमा—'पूर्णा'** कहलाती हैं। अतः **'पूर्णा'**-तिथि होने से **पञ्चमी** के दिन किए जानेवाले कर्म का पूरा फल प्राप्त होता है।

यह एक सामान्य नियम है कि यदि कोई **विशेष तिथि** किसी विशेष **'पर्व-काल'** दिन में पड़ती है, तो उसका महत्त्व उसी अनुपात में बढ़ जाता है। **'तीर्थ-राज' प्रयाग** के **कुम्भ पर्व** के महान् पुण्य काल में इसी नियम के अनुसार इस वर्ष की **माघ शुक्ला पञ्चमी**— 'महा

बसन्त पञ्चमी' के रूप में अति पुण्य-दायिनी हो गई है। अतः इस दिन का **गङ्गा-यमुना-सरस्वती के पवित्र सङ्गम का स्नान** बहुत ही **दुर्लभ कल्याणकारी धार्मिक कर्म** बन गया है। इस दिन **'सोमवार'** होने से इसका महत्त्व **अमृत-तुल्य** हो जाता है।

'बसन्त-पञ्चमी' के दिन **भगवती सरस्वती की जयन्ती** तो है ही, साथ ही **'श्री'** अर्थात् **लक्ष्मी जी की भी पूजा का विशेष विधान** है क्योंकि इसी दिन **भगवान् विष्णु** के अनुरोध से **लक्ष्मी जी** ने इस विश्व में पधारने की दया की थी। अतः ऋषियों ने बताया है कि इस दिन किसी **जल-पूर्ण पात्र** में या **शालग्राम शिला** पर **लक्ष्मी जी का आवाहन** कर उनका पूजन **श्वेत पुष्पादि** से करना चाहिए। इससे **निर्धनता** दूर होकर **सम्पन्नता का लाभ** मिलता है।

यही नहीं, **रति-काम-महोत्सव, तक्षक-पूजा** जैसे अनुष्ठानों के अतिरिक्त इस पवित्र **'बसन्त पञ्चमी'** के दिन कोई भी **शुभ कर्म** निश्चिन्त होकर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए **पुंसवन, सीमन्त, जात-कर्म, नाम-करण, अन्न-प्राशन, विद्यारम्भ, उपनयन** आदि कोई भी संस्कार इस दिन सम्पन्न कराए जा सकते हैं। **नवीन वस्त्र, नए आभूषण** आदि धारण करने के लिए या **गाय** आदि को घर में लाने के लिए, कोई **नया वाहन—साइकिल, मोटर साइकिल, स्कूटर, कार** आदि खरीदने के लिए यह तिथि प्रशस्त है क्योंकि **'पूर्णा'-तिथि** होने से यह **प्रत्येक शुभ कार्य का पूरा उत्तम फल** पाने में सहायिका होती है।

माघ मास की **'बसन्त पञ्चमी'** की उक्त महिमा भारतीय ऋषियों के **काल-विज्ञान** पर आधारित है। **काल** या **समय** सभी विषयों को समाप्त कर देता है। इसी से उसे **'महा-काल'** कहते हैं। हमारे पूज्य ऋषियों ने उसके सम्बन्ध में कितना गहन अध्ययन किया है, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि उन्होंने अपनी अनवरत तपस्या के द्वारा इस सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक बीते हुए **काल की गणना** करने में ही सफलता नहीं पाई, अपितु इस **काल** को अनेक वर्गों में बाँट कर उसे सभी लोगों को समझाने का भी सफल प्रयास किया।

यह उन्हीं की दूर-दर्शिता है कि आज हमें यह ज्ञात है कि वर्तमान समय में **'वैवस्वत'**-नामक **सातवें मनु** का शासन-काल चल रहा है। इस शासन काल के **२७ महा-युग** बीत चुके हैं। **२८वें महा-युग** के भी **सत्य-युग, त्रेता-युग** और **द्वापर-युग** समाप्त हो चुके हैं और वर्तमान **कलि-युग** के भी **५१०१ सौर वर्ष** बीत चुके हैं। **नर्मदा नदी** के उत्तर में **सम्राट् विक्रमादित्य** द्वारा प्रवर्तित संवत्सर का **'विजय'**-नामक सम्वत् **अप्रैल,** २००० से चल रहा है और उसी संवत् के **माघ मास** में १२ वर्षों बाद पड़नेवाले **'कुम्भ' के पर्व-काल** में हम भी **'वागीश्वरी'- जयन्ती** से विभूषिता **'बसन्त-पञ्चमी'** का महोत्सव मनाने का सौभाग्य प्राप्त करने जा रहे हैं।

* * *

'कुम्भ'-पर्व की महा-माघी पूर्णिमा

'तीर्थ-राज' प्रयाग के **'कुम्भ'-पर्व** का पाँचवाँ महान् पर्व-काल **८ फरवरी, २००१** को **वृहस्पतिवार** के दिन **माघी-पूर्णिमा** की पवित्र तिथि पर मनाया जाएगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विक्रमी संवत् के ग्यारहवें मास का नाम **'मघा'**-नक्षत्र से सम्बन्धित होने के कारण **'माघ'** पड़ा है। वैदिक काल से ही **'मघा'**-नक्षत्र की प्रसिद्धि रही है। इस नक्षत्र के अधिष्ठातृ देवता **'पितर-गण'** हैं। **पितरों की महिमा** देवताओं से भी बढ़कर इसलिए है कि मनुष्यों के कल्याण के लिए वे सहज ही तत्पर हो जाते हैं और उनकी उपासना अत्यन्त सरल है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गन्ध, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्यादि कितने ही उपचारों की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु **'पितर'-गण** जल मात्र के तर्पण से ही प्रसन्न हो जाते हैं! इस तथ्य से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इस प्रकार सहज प्रसन्न होनेवाले **पितरों** द्वारा अधिष्ठित **'मघा'**-नक्षत्र से सम्बन्धित **'माघ'**-नामक महीना मनुष्यों के लिए कितना कल्याणकारी हो सकता है।

ऋषियों द्वारा इसी से प्राचीन काल से ही **'माघ'-स्नान** को बड़ा महत्त्व दिया गया है। यह स्नान—**गङ्गा** जैसी पवित्र नदियों में या किसी बहती हुई जल-धारा में किए जाने का नियम रहा है। **स्नान** के लिए सर्वोत्तम समय **सूर्योदय के पूर्व** वह काल माना गया है, जब आकाश में **नक्षत्र** दिखाई दे रहे हों। उससे कम उत्तम वह समय बताया गया है, जब **सूर्य** दिखाई न पड़े। **सूर्योदय** हो जाने के बाद का समय **स्नान** के लिए उत्तम नहीं कहा गया है।

'माघ'-स्नान की इतनी महिमा है कि ऋषियों ने पूरे महीने भर प्रति-दिन स्नान करने का एक **अनुष्ठान** ही निर्धारित कर दिया। इस **स्नान** के करनेवाले के लिए यह आवश्यक है कि वह **'पौष'-पूर्णिमा** को स्नान कर **'माघ'-व्रत का प्रारम्भ** करें और **'माघ'-पूर्णिमा** को स्नान कर **'व्रत'** का समापन करें। कुछ लोग **'मकर'**-संक्रान्ति से भी **'माघ'**-स्नान का सङ्कल्प लेते हैं और **'महा-शिव-रात्रि'** के स्नान से इस **महद् अनुष्ठान** को पूर्ण करते हैं।

जब सामान्य वर्ष के **'माघ'-स्नान** की इतनी गरिमा है, तो बारह वर्ष बाद जिस **'माघ'**-मास में **'कुम्भ' का दुर्लभ पर्व** मनाया जा रहा हो, उसके माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है!

ऐसी दशा में **'कुम्भ'** के **पर्व-काल** की अवधि में जो भाग्यशाली पूरे **'माघ'-स्नान** करते हैं, उनके पुण्य की कोई सीमा नहीं है। साथ ही, जो ऋषियों के अनुसार **'माघ'**-मास में केवल **तीन बार स्नान** करते हैं, उन्हें भी अकल्पनीय 'पुण्य'-लाभ मिलता है।

ऋषियों को यह बात भली प्रकार ज्ञात थी कि संसार के माया-जाल में फँसे हुए सामान्य लोगों को तीन दिन भी स्नान करना कठिन प्रतीत होगा। अतः उन्होंने **'तिथि'-पर्वों** का भी विधान किया, जो अल्प समय में थोड़े ही परिश्रम से पर्याप्त पुण्यार्जन का अवसर

लोगों को उपलब्ध करा देते हैं। इसी विधान के अनुसार **'कुम्भ'-पर्व** के **तिथि-पर्वों** का निर्देश हुआ है। यथा— (१) **पौष-पूर्णिमा**, (२) **'मकर'-संक्रान्ति**, (३) **मौनी अमावास्या**, (४) **बसन्त पञ्चमी** और (५) **'माघ'-पूर्णिमा**। इनमें से प्रत्येक की महिमा प्रख्यात ही है।

'पूर्णिमा'-तिथि की महिमा उसके नाम से ही स्पष्ट है। **'पूर्णा'**-शब्द के लिए यह प्रसिद्ध है कि —

पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते।

अर्थात् यह सारा बाह्य-स्वरूप **'पूर्ण'** है, इसका अन्तः-स्वरूप भी **'पूर्ण'** है, **'पूर्ण'** से **'पूर्ण'** का विकास है। यहाँ तक कि **'पूर्ण'** से **'पूर्ण'** को निकाल लेने पर भी **'पूर्ण'** ही शेष रहता है।

पूर्णता की इसी विलक्षणता से **'पूर्णिमा'**-तिथि संयुक्त है। इस तिथि में **अमृत-वर्षा करनेवाले चन्द्रमा की सोलहों कलाएँ** प्रत्यक्ष विद्यमान रहती हैं। इसी से वर्ष के सभी महीनों की **'पूर्णिमा'**-तिथियाँ शुभ मानी गई हैं। फिर **माघ**-जैसे **पितर-गण द्वारा अधिष्ठित मास** की **'पूर्णिमा'**-तिथि का क्या कहना! सामान्य **'पूर्णिमा'** की तिथि में किए जानेवाले **स्नान, दान, व्रत** या **कथा-पारायण**, **सत्सङ्ग** आदि का फल अनन्त और अक्षय होता है। **'माघ'-पूर्णिमा** का फल द्वि-गुणित हो उठता है और **'कुम्भ'** के **पावन पर्व-काल** में पड़नेवाली **'माघी'-पूर्णिमा** कितनी अपूर्व फल-दायिनी हो सकती है, इसका केवल अनुमान ही किया जा सकता है।

८ **फरवरी** को **'अमृत'-योग** व **गुरुवार** है। अतः यह **'पूर्णिमा'— अमृता** होने के कारण **'महा'-पूर्णिमा** बन गई है। **'अमृत'**-युक्त होकर **'पूर्णिमा'** अधिकाधिक **'अमृत'-दायिनी तिथि** हो गई है, यह स्वतः स्पष्ट है।

'कुम्भ'-पर्व भी **अमृत का द्योतक** है। **'मघा'**-नक्षत्र भी **अमरत्व-प्राप्त पितर-गणों की कृपा का सूचक** है, जिससे **'माघ'-मास** भी **अमरता का सन्देश-वाहक** बनकर लोगों को पुण्य कर्मों के करने की प्रेरणा देता है। **'पूर्णिमा'** का **षोडश-कला-युक्त चन्द्रमा— अमृत की वर्षा** करता ही है। इन सभी संयोगों का लाभ उठाने के लिए **'गङ्गा-यमुना-सरस्वती'** की पवित्र त्रिवेणी के **सङ्गम-क्षेत्र** से उत्तम कर्म-भूमि विश्व में अन्य कहाँ सुलभ है? चाहिए तो यह कि इन पवित्र दिव्य सरिताओं की **अधिष्ठात्री देवियों का विधि-वत् ध्यान-पूजन** कर अहर्निश सत्कर्म कर **अमरत्व** का लाभ प्राप्त किया जाए, किन्तु जो यह सब न कर सके, वह केवल इनके **'नाम'-कीर्तन** से ही अपने को धन्य कर सकता है। एक महात्मा के शब्दों में यहाँ **'नाम'-कीर्तन** करते हुए हम **दुर्लभ 'कुम्भ'-कालीन 'माघी'-पूर्णिमा का स्वागत** करते हैं—

ॐ गङ्गायै नमः। ॐ यमुनायै नमः। ॐ सरस्वत्यै नमः। ॐ तीर्थ-राजाय प्रयागाय नमः। ॐ अक्षय-वट-शोभित-त्रिवेणी-सङ्गमाय नमः।।

* * *

'कुम्भ'-पर्व की महा-शिव-रात्रि

'तीर्थ-राज' प्रयाग के विश्व-विख्यात **'कुम्भ'-समारोह** का अन्तिम छठा पर्व-काल **फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी, बुधवार** तदनुसार दिनाङ्क **२१ फरवरी, २००१** को **'महा-शिव-रात्रि'** के रूप में उपस्थित होगा।

उल्लेखनीय है कि **विक्रम संवत्सर** के प्रत्येक मास के **कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी की रात्रि— 'शिव-रात्रि'** कहलाती है। यह **'मास-शिव-रात्रि'** के नाम से प्रसिद्ध है और लोग उस दिन **व्रत-नियम** का पालन करते हैं, किन्तु **'माघ'-मास की 'पूर्णिमा'** के तुरन्त बाद **फाल्गुन मास** के **कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी** प्रति वर्ष **'महा-शिव-रात्रि'** के रूप में ही मनाई जाती है क्योंकि पुराणों के अनुसार इसी दिन **भगवान् शिव** का **पार्वती जी** से **विवाह** सम्पन्न हुआ था।

फाल्गुन वर्ष का अन्तिम महीना है और **'महा-शिव-रात्रि'— 'कुम्भ'-समारोह का अन्तिम पर्व-काल** तो है ही, इस बार वह **'छत्र'-योग** से युक्त है। स्वयं **भगवान् शिव— मृत्युञ्जय-स्वरूप** हैं, **'जीवनी'-शक्ति के संरक्षक** हैं। इस प्रकार **अमृत-कुम्भ** के अवसर पर **अमृत-मयी महा-शिव-रात्रि** का महत्त्व इस बार **वार्षिक महा-शिव-रात्रि** से कहीं अधिक बढ़ गया है।

'रात्रि' से आशय केवल सामान्य रात से नहीं है। **'रात्रि'-देवी की महिमा** वैदिक काल से गाई गई है। **'ऋग्वेद'** में **'रात्रि'** और **'उषा'** को **अग्नि का रूप** बताया गया है। दोनों ही **आकाश की बहिन** और **ऋतु की माता** हैं। **'रात्रि'-सूक्त** में **रात्रि देवी** की मार्मिक शब्दों में स्तुति की गई है। उससे ज्ञात होता है कि **'रात्रि'** वास्तव में अन्धकार-पूर्ण काल की वाचक न होकर चमकीले प्रकाश की बोधक है, जो घने अँधेरे को दूर करता है। **भगवान् श्रीकृष्ण** का वचन है कि **'या निशा सर्व-भूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी'** अर्थात् सब प्राणी लोग जिसे रात्रि मानकर सो जाते हैं, उसे **देवी-रूप** मानकर योगी लोग उस समय जागरण करते हैं और अभीष्ट सिद्धियों को अर्जित करते हैं।

'रात्रि' की कितनी महिमा है, इसका अनुमान इस तथ्य से किया जाता है कि ऋषियों ने साधना के लिए **'मोह'-रात्रि, 'काल'-रात्रि, 'महा'-रात्रि** जैसी कितनी ही रात्रियों का महत्त्व प्रतिपादित किया है। **'शिव'**-शब्द का अर्थ ही है—**कल्याण, मङ्गल, शुभ** आदि। उससे जुड़कर बना नाम **'शिव-रात्रि'** अनूठा ही है क्योंकि उसका शब्दार्थ होता है—**कल्याण-मयी, मङ्गल-कारिणी, शुभ-रात्रि।** अतः उसके गौरव-गान में प्रचलित श्लोक सर्वथा यथार्थ ही हैं—**'परात्परं नास्ति, शिव-रात्रिः परात्परम्।'**

अर्थात् श्रेष्ठ से बढ़कर कुछ नहीं है किन्तु **'शिव-रात्रि'** श्रेष्ठ से भी बढ़कर है। यही कारण है कि **'शिव-रात्रि' का 'व्रत'** ऋषियों द्वारा **'नित्य'** तथा **'काम्य'**— दोनों प्रकार का बताया गया है। **'नित्य व्रत'** उसे कहते हैं, जिसे करना सभी के लिए अनिवार्य है अर्थात् यदि कोई **'शिव-रात्रि'** के दिन **नियमों का पालन** नहीं करता, उसे पाप लगता है। स्पष्ट कहा

गया है कि—

ये नार्चयन्ति भक्तेशं, रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्। जन्तु-जन्म-सहस्रेषु, भ्रमन्ते नात्र संशय।।

अर्थात् जो लोग त्रिभुवन के ईश्वर, भक्तों के स्वामी रुद्र की पूजा **शिव-रात्रि** के दिन नहीं करते, वे हजारों जन्मों तक पशु-योनियों में भटकते रहते हैं।

चाहे पुरुष हो, या स्त्री— सभी के लिए **'शिव-रात्रि का व्रत'** अनिवार्य है। ऋषियों का निर्देश है कि देवता-समान पुरुष हो या पति-व्रता स्त्री, **शिव-रात्रि** के दिन उसे भक्ति-पूर्वक महा-देव की पूजा करनी ही चाहिए क्योंकि सागर चाहे सूख जाए, हिमालय भी चाहे डिग जाए, किन्तु शिव का व्रत अनिवार्य है।

ठीक भी है, **भगवान् शिव** तीनों देवों में अपना निराला ही स्थान रखते हैं। **ब्रह्मा जी** सृष्टि करते हैं। **विष्णु भगवान्** पालन करते हैं और **भगवान् शिव** संहार का कठिन कार्य करते हैं। **ब्रह्मदेव— सत्व-गुण के अधिष्ठाता** हैं, तो **भगवान् विष्णु— रजो-गुण** के। सभी को आतङ्कित करनेवाले **तमो-गुण के अधिष्ठातृ देवता हैं—शिव जी।** विलक्षण बात यह है कि संहार करनेवाले भयङ्कर ये भगवान् सबसे अधिक **दयालु, भोले** और **औढर-दानी** हैं। **ब्रह्मा** और **विष्णु** को प्रसन्न करना जितना कठिन है, **भगवान् शिव की दया** पा लेना उतना ही सरल है। **ब्रह्म-लोक** और **विष्णु-लोक** वैभव-सम्पन्न हैं, तो **शिव-लोक** में **श्मशान, भस्म, कुद्रूप-विद्रूप गणों की प्रमुखता** है। **ब्रह्माजी** और **भगवान् विष्णु की पूजा** करने का अधिकार सब किसी को नहीं है, किन्तु **शिव जी की पूजा** करने का अधिकार सभी को है। विश्व के कल्याण के लिए **'समुद्र-मन्थन'** से निकले **कराल विष का पान— भगवान् शिव** ने ही किया है। अतः उनके **'शिव-रात्रि-व्रत'** का अनिवार्य होना उचित ही है। **'शिव-रात्रि' के व्रत** करनेवाले को फल भी अभूत-पूर्व मिलता है। स्वयं **भगवान् शिव** ने अपने **श्री-मुख** से कहा है कि—

मम भक्तस्तु यो देवि! शिव-रात्रिमुपोषकः। सर्वान् भुक्त्वा महा-भोगान्, ततो मोक्षमवाप्नुयात्।

अर्थात् मेरा जो भक्त **शिव-रात्रि का व्रत** रखता है, वह महान् सुखों का उपभोग करने के बाद मोक्ष को प्राप्त करता है।

'शिव-रात्रि' का 'व्रत' कोई कठिन भी नहीं है। **'व्रत'-दिवस** के पहले अर्थात् **द्वादशी** के दिन ही **भगवान् शिव** के प्रति यह निवेदन करना चाहिए कि **'हे देव! मैं कल त्रयोदशी के दिन रात्रि में जागूँगा और यथा-शक्ति दान, तप और हवन करूँगा। हे शम्भो! मैं त्रयोदशी के दिन भोजन नहीं करूँगा, उसके अगले दिन ही खाऊँगा। हे भगवन्! आप मुझे आनन्द और मोक्ष** देनेवाले आश्रय-दाता हैं।'

त्रयोदशी के दिन **उपवास** करे या **फलाहार** करे और यथा-शक्ति भगवान् शिव के प्रसिद्ध-मन्त्र **'ॐ नमः शिवाय' का जप** करे। रात्रि में जागरण करते हुए **भगवान् शिव की स्तुतियों का पाठ, मन्त्र-जप** आदि करना चाहिए।

* * *

॥ ॐ कुम्भाय नमः ॥

'कुम्भ'-पर्व-विभूषित 'तीर्थ-राज प्रयाग'

विवरण-सहित विशेष कृत्य

२३- 'तीर्थ-राज प्रयाग'-रूपी तत्त्व-ज्ञान ४६

२४- 'प्रयाग' का 'शक्ति'-पीठत्व—'प्रयागे तु ललिता' ४७

२५- 'तीर्थ-राज' प्रयाग की जय-जय-कार! ४६

२६- 'कुम्भ'-विभूषित 'प्रयाग-राज' ५२

२७- 'प्रयाग-राज' में 'गङ्गा'-स्नान की महिमा ५३

२८- 'तन्त्र-शास्त्र' के अनुसार संक्षिप्त 'गङ्गा'-स्नान-विधि ५५

२६- 'अमरत्व' का प्रत्यक्ष साक्षी—'अक्षय-वट' ५६

३०- 'अक्षय'-वट के सान्निध्य में श्रीबड़े हनुमान जी ६०

३१- 'तीर्थ-राज' प्रयाग के प्राचीन स्थान ६१

३२- 'भरद्वाज एवं दुर्वासा मुनि आश्रम' ६३

३३- 'तीर्थ-राज' प्रयाग में विशेष कृत्य— (१) माघ-स्नान ६४

(२) श्रीललिता-महा-लक्ष्मी-नाम-साधना ६५

(३) श्रीगङ्गा-यमुना एवं प्रयाग-स्तुति ६६

(४) 'तीर्थ-राज-प्रयाग' में सूर्यार्घ्य-दान ७०

(५) श्रीवेणी-माधव-नाम-साधना ७१

* * *

'तीर्थ-राज प्रयाग'-रूपी तत्त्व-विज्ञान

जिसके द्वारा मनुष्य **'तर'** जाते हैं; अर्थात् अपने परम लक्ष्य **'आत्म-ज्ञान'**-रूपी मोक्ष को प्राप्त करते हैं, उसे **'तीर्थ'** कहते हैं। इस प्रकार **'कुम्भ'**-रूपी शरीर या **'आत्म-ज्ञान'** का **'तीर्थ'** से घनिष्ठ सम्बन्ध है। चार प्रमुख तीर्थों में 'कुम्भ'-पर्व के आयोजन का यह भी एक कारण है। **'प्रयाग'—'तीर्थ-राज'** है, क्योंकि बाह्य व आन्तरिक दोनों ही दृष्टियों से यह मनुष्यों को तारनेवाला है। बाह्य दृष्टि से यह **'गङ्गा-यमुना' के मनोरम सङ्गम** तक पहुँचानेवाला है, तथा आन्तरिक दृष्टि से यह **'इड़ा' = गङ्गा, 'भारती'= पिङ्गला = यमुना** एवं **'सरस्वती'** के चिन्तन से प्राप्त होनेवाले दिव्य आनन्द को दिलानेवाला है।

'यजुर्वेद' के निम्न-लिखित मन्त्र को देखिए, इनमें **प्राचीन ज्ञान-विज्ञान** स्पष्ट रूप से झलकता है —**'देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती।'**

अर्थात् **तीन देवियाँ हैं, जिन्हें इड़ा, सरस्वती और भारती कहा जाता है। मध्य में इनके योग के चिन्तन से आनन्द की प्राप्ति होती है।...हे मनुष्य! तू भी इनकी पूजा तथा इनसे सम्बन्धित देवताओं की अर्चना एवं योग द्वारा सङ्गति कर। तुझे भी सभी वस्तुओं की प्राप्ति होगी। (देखिए, 'राष्ट्र-गुरु' स्वामीजी महाराज विरचित 'वैदिक उपदेश')।**

'ऋग्वेद' का **खिल सूक्त** (१०.७५) भी कहता है— **'जहाँ कृष्ण (काले) और श्वेत (स्वच्छ) जलवाली दो सरिताओं का सङ्गम है, वहाँ 'स्नान' करने से मनुष्य स्वर्गारोहण करता है।'**

'पुराण' उक्त **'वेद-विज्ञान'** को कुछ इस प्रकार कहते हैं— 'प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि-प्रारम्भ करने हेतु तीन वेदियाँ बनाई थीं। इनमें 'प्रयाग'—'मध्यम वेदी' है। महाभारत, वन-पर्व (८७, १८-१६) में इसी बात को इस रूप में कहा गया है—**सर्वात्मा ब्रह्मा ने सर्व-प्रथम यहाँ 'यजन' किया था, इसीलिए इसका नाम 'प्रयाग' = 'प्र + याग' = 'प्रकृष्ट याग' पड़ा।**

'नृसिंह-पुराण' में नारायण को **'योग'-मूर्ति** के रूप में **'प्रयाग'** में स्थित बताया है। **'मत्स्य-पुराण'** के अनुसार **'रुद्र'** द्वारा एक कल्प के उपरान्त प्रलय करने पर भी **'प्रयाग'** नष्ट नहीं होता। **'ब्रह्मा'**—छद्म रूप में, **'विष्णु'—वेणी माधव**-रूप में तथा **'शिव'—'वट-वृक्ष'** के रूप में आवास करते हैं और सभी **देव-गन्धर्व-सिद्ध-ऋषि** पाप-शक्तियों से **'प्रयाग'-मण्डल** की रक्षा करते हैं।

'वेद-पुराण' का उक्त **'ज्ञान-विज्ञान' योगिराज भगवान् गोरखनाथ** की वाणी से स्पष्ट होता है—

अवधू! चल तू अब रे 'प्रयाग',

जहाँ विराजे विरजा— उसमें-चलकर वहाँ नहा ले,

जो चाहे, सो विरजा नहा के— जा 'प्रयाग' में पा ले।

'गोरख-वाणी' को स्पष्ट करते हुए **भारतीय जी** कहते हैं— **"मैं वही हूँ, मैं शिव हूँ—इस** प्रकार का बोधात्मक ज्ञान **'प्रयाग'** में ही होता है। यहाँ सब कुछ **'सम-भाव'** में दिखता है। **'प्रयाग'**-गमन से पूर्व **शक्ति के जागरण** से साधक निष्पाप हो उठता है। **'प्रयाग'** पहुँचकर **'ललिता-माहेश्वरी-स्थिति'** प्राप्त होती है।"

* * *

प्रयाग का शक्ति-पीठत्व : 'प्रयागे तु ललिता'

भारत के आध्यात्मिक जगत् में **५१ या १०८ शक्ति-पीठों** की बड़ी प्रसिद्धि है और इसी क्रमं में यह भी मान्यता है कि **'प्रयागे तु ललिता....'** अर्थात् **'तीर्थ-राज' प्रयाग** में **श्री ललिता देवी** का **'शक्ति-पीठ'** है।

शक्ति-पीठों की यह ऋषि-कल्पना बड़ी प्राचीन है। इसका सम्बन्ध **प्रजा-पति दक्ष** के उस यज्ञ से जोड़ा जाता है, जिसमें **भगवान् शिव** की शक्ति **सती** ने देह-त्याग किया था और उनके शरीर को लेकर **भगवान् शङ्कर** उन्मत-वत् आकाश में इधर-उधर भ्रमण करने लगे थे। उन्हें उस मोह से मुक्त कराने के लिए **भगवान् विष्णु** को **सती** की देह को अपने **सुदर्शन-चक्र** द्वारा खण्ड-खण्ड करना पड़ा था।

इस प्रकार जो अङ्ग भारत-भूमि पर जहाँ-जहाँ गिरे, वहीं एक **'शक्ति-पीठ'** की स्थापना हो गई। **'प्रयाग'**-क्षेत्र में **सती** के **हाथों की अँगुलियाँ** गिरीं और उनके तेज से यहाँ **'श्री ललिता-पीठ'** का आविर्भाव हुआ।

लगभग ५० वर्ष पूर्व प्रकाशित **'पीठ-स्थानोपत्ति-समेत अलोपशङ्करी-स्तोत्र'** नामक अपनी कृति में एक **देवी-भक्त स्व० पण्डित यमुनाप्रसाद शुक्ल** ने लिखा है कि—

''....इस पवित्र भूमि में, **प्रयाग-क्षेत्र** में **सती के हाथ की अँगुलियाँ** गिरी थीं, जिससे **श्री ललिता अलोपशङ्करी देवी** तथा **भव भैरव** प्रकट हुए थे।...''

उक्त पवित्र भूमि का स्थान-निर्देश करते हुए उन्होंने यह भी लिखा है कि **''सङ्गम से पश्चिम एक कोश पर 'ललिता' अलोपी देवी के रूप में भव-भैरव के साथ विराजमान हैं।''**

श्री ललिता अलोपशङ्करी देवी का उक्त स्थान आज **'अलोपी देवी'** के नाम से प्रसिद्ध है और इन्हीं के नाम से पूर्व-काल में, जब इस क्षेत्र में सघन बस्ती नहीं थी, केवल बाग-ही-बाग चारों ओर दिखाई देते थे, यह क्षेत्र **'अलोपीबाग'** नाम से विख्यात हुआ और इन दिनों भी **प्रयाग नगर** का उक्त क्षेत्र इसी नाम से जाना जाता है।

श्री अलोपी देवी के मन्दिर में भगवती की कोई **प्रतिमा** नहीं है और न ही उनका कोई **चित्रादि** है। प्रमुख पूजनीय स्थान में **एक चौकोर चबूतरा** है, जिसके मध्य में एक चौकोर छोटा-सा **कुण्ड** है, जिसमें जल भरा रहता है। इस **कुण्ड** के ऊपर छत की कड़ी से लटकता हुआ एक **झूला** है। इसी **कुण्ड-झूले में भगवती श्री ललिता अलोपशङ्करी देवी की पूजा** भक्त-जन चिर-काल से करते आ रहे हैं। 'कुण्ड' में जल के नीचे 'श्रीयन्त्र' प्रतिष्ठित है।

उक्त मन्दिर के ठीक सामने आधे फर्लांग की दूरी पर **भगवान् शङ्कर** का मन्दिर है, जिसमें **शिव-लिङ्ग** प्रतिष्ठित है। कदाचित् यही **'भव'-भैरव** का स्थान है, किन्तु यहाँ भी ऐसा कोई सङ्केत नहीं है, जिससे दर्शनार्थी लोग **भगवती श्री ललिता के भैरव भगवान् 'भव'** का स्मरण कर सकें।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस स्थल पर **अलोपी देवी** का वर्तमान मन्दिर अवस्थित है, वह एक **जाग्रत् स्थान** रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस स्थान के चारों ओर दिन-प्रतिदिन स्थापित एवं प्रतिष्ठित विविध देवालयों एवं आध्यात्मिक संस्थानों का दिखाई देना है।

यह कोरा संयोग ही नहीं है कि लगभग ८५ वर्षों पूर्व **संवत् १८७४ (सन् १८१७ ई०)** में इस पवित्र शक्ति-सम्पन्न भू-भाग से आकृष्ट होकर **बैसवाड़ा (उन्नाव-रायबरेली जनपद, उत्तर प्रदेश)** के **राना बोधा सिंह** ने **अठारह रुद्रों की प्राण-प्रतिष्ठा** यहाँ करने का महद् आयोजन किया और **संवत् १९०९ (सन् १८५२)** तक **दो विशाल और सत्रह छोटे-छोटे मन्दिरों** का निर्माण किया। दो विशाल मन्दिरों में से एक में **रुद्र का वृहत् शिव-लिङ्ग** और दूसरे में, जो कि ठीक उसके सामने है, उनके **नन्दी की मूर्ति** स्थापित है। अन्य १७ छोटे मन्दिरों में से प्रत्येक में **नन्दी-सहित शिव-लिङ्ग** प्रतिष्ठापित हैं। इस प्रकार कुल **अष्टादश रुद्रों** के भव्य दर्शन यहाँ सुलभ हैं। यह ऐतिहासिक मन्दिरों का झुण्ड **'अलोपी-देवी' के मन्दिर के उत्तर** कुछ ही दूर पर उपेक्षित दशा में आज भी देखा जा सकता है। **अष्टादश रुद्रों** के उक्त देवालय-समूह के निर्माण के तुरन्त बाद ही, उसके दक्षिण ओर दारागञ्ज, प्रयाग के निवासी **राय राधारमण अग्रवाल** भी इस पुण्य-स्थली से प्रभावित होकर एक **भव्य शिव-मन्दिर** बनवाने को तत्पर हुए। इस विशाल मन्दिर में भी **नन्दी-सहित भव्य शिव-लिङ्ग** की प्रतिष्ठा हुई।

सर्वाधिक विस्मय की बात तो यह है कि ५० वर्ष पूर्व **जगद्-गुरु श्री शङ्कराचार्य की दिव्य परम्परा** भी इस जाग्रत् क्षेत्र के प्रति सहज ही आकृष्ट हो उठी और **सन् १९५०** में प्रतापगढ़ की दलीपपुर रियासत के **राय पशुपत सिंह** से इस क्षेत्र का भूखण्ड उत्तर भारत के प्रख्यात **बदरिकाश्रम के ज्योतिर्मठ के जगद्-गुरु श्री शङ्कराचार्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती** द्वारा क्रय किया गया, जहाँ उक्त मठ के **प्रधान कार्यालय** का विशाल भवन ठीक **'अलोपी'-देवी के मन्दिर** के सामने निर्मित हुआ।

ज्योतिर्मठ के वर्तमान विकसित स्वरूप का श्रेय **ब्रह्मीभूत स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती** को ही है, जो परम सिद्ध महा-पुरुष थे। उन्होंने इस स्थल को **ज्योतिर्मठ** के **प्रधान कार्यालय** हेतु चुना, यह बड़े महत्त्व की बात है। **ज्योतिर्मठ** के उक्त भवन के प्रशस्त प्राङ्गण में एक भव्य मन्दिर में **आदि शङ्कराचार्य** एवं **ब्रह्मीभूत स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती** की दिव्य संगमर्मर की प्रतिमाएँ तो दर्शनीय हैं ही, साथ-ही वहाँ **भगवती ललिता के पूजन-यन्त्र 'श्री-चक्र'** और उनके शिव **भगवान् कामेश्वर (श्री चन्द्र-मौलीश्वर)** की भी विधिवत् प्रतिष्ठा की गई है।

श्रीशङ्कराचार्य-भवन के निकट ही **भगवती काली** और **भगवती दुर्गा** के मन्दिर भी विद्यमान हैं। इनके सिवा **पञ्च-मुखी हनुमान** तथा **एक-मुख हनुमान** आदि अन्य देवताओं की प्रतिमाएँ भी हैं। इधर **प्राचीन अलोप-शङ्करी मन्दिर** के परिसर का विकास भी द्रुत-गति से हुआ है। **'नव-दुर्गाओं की प्रतिमाएँ'** भी प्रतिष्ठित हो चुकी हैं। विशाल **'सत्सङ्ग-सभागार'** भी बन गया है। यही नहीं, पुराने लघु-काय मन्दिर के स्थान पर **'विशाल भव्य मन्दिर'** का निर्माण भी अपनी पूर्णता को प्राप्त कर रहा है।

विशेष जानकारी के लिए देखिए **'श्रीअलोप-शङ्करी देवी' पुस्तक मूल्य ४-००।**

'तीर्थ-राज' प्रयाग की जय-जय-कार!

'मत्स्य पुराण' में प्रयाग-राज का वर्णन

'स तीर्थ-राजो, स जयति प्रयागः।' जय-जय-कार कीजिए **'तीर्थ-राज' की,** जिनके माहात्म्य को हमारे धर्म-ग्रन्थ गाते नहीं अघाते और कितने ही न जाने कब से जिनके प्रताप से तर गए और तर जाएँगे। 'मत्स्य-पुराण' में **मार्कण्डेय ऋषि महाराज युधिष्ठिर** से कहते हैं—

शृणु राजन् महा-भाग! सर्व-पातक-नाशनम्। प्रयाग-गमनं श्रेष्ठं, नराणां पुण्य-कर्मणाम्।।

मार्कण्डेय ऋषि **'प्रयाग'-क्षेत्र की स्थिति** बताते हैं—

"गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये, पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं राज-शार्दूल! त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।।
ततः पुण्य-तमं नास्ति, त्रिषु लोकेषु भारत!।।
दश-तीर्थ-सहस्राणि, तिस्रः कोटस्तथापराः। तेषां सान्निध्यमत्रैव, ततस्तु कुरुनन्दन!
कलां नार्हन्ति षोडशीं।।

यह **'तीर्थ-राज'— गङ्गा-यमुना के मध्य** में, जो पृथ्वी का **'जघन'**-स्थल कहा गया है, तीनों लोकों के पुण्य देने में अतुलनीय है। इसी में दस हजार बड़े तीर्थों एवं तीन करोड़ तीर्थों का वास है। इसके समान पुण्य-दायक स्थल की सोलहवीं कला के बराबर भी पुण्य देनेवाला अन्य कोई स्थान नहीं है।

'जघन'-शब्द बड़ा ही रहस्य-मय है, मननीय है। कोश में इस शब्द का सामान्य अर्थ दिया है —पुट्ठा, कूल्हा, नितम्ब। विशेष अर्थों में **'जघन'** स्त्रियों के 'पेड़ू' अथवा सेना के पिछले—**'सुरक्षित भाग'** को कहते हैं। इन अर्थों पर गम्भीरता-पूर्वक चिन्तन करने से ही पृथ्वी के इस **'जघन-स्थल' का रहस्य** समझा जा सकता है। रहस्य को समझने से **'प्रयाग-राज'** के उक्त विशिष्ट **'स्थल'** की वास्तविक उच्च महिमा हृदय को आलोकित कर देगी।

'मत्स्य-पुराण' के एक सौ बारहवें अध्याय में **भगवान् श्रीकृष्ण** भी स्वयं प्रकट होकर **'तीर्थ-राज'** के माहात्म्य का वर्णन करके **राजा युधिष्ठिर** को **'प्रयाग-राज'** जाने एवं वहाँ **स्नानादि-पूजन-दान** करने का निर्देश करते हैं। **महाराज युधिष्ठिर** भी विधान-पूर्वक **'प्रयाग-राज'** जाकर **स्नानादि-दान-पुण्य** करके, अत्यन्त **शान्ति** का अनुभव करते हैं। **'महा-भारत'** के युद्ध में बन्धु-बान्धवों सहित अनेक महा-वीरों के मारे जाने के सन्ताप से वे मुक्त हो जाते हैं।

'राम-चरित-मानस' में प्रयाग-राज का वर्णन

नाना-पुराण-निगमागम-सम्मत **'राम-चरित-मानस'** में **गोस्वामी तुलसीदास जी** का वर्णन भी अद्भुत है, जो कि पहिले ही **'बाल-काण्ड'** के प्रारम्भ में मिलता है—हृदयङ्गम करने योग्य है—

मुद मङ्गल-मय सन्त-समाजू। जो जग जङ्गम तीरथ-राजू।।
राम-भक्ति जहँ सुर-सरि-धारा। सरसइ ब्रह्म-विचार प्रचारा।।

विधि-निषेध-मय कलि-मल-हरनी। करम-कथा रवि-नन्दिनि बरनी।।
हरि-हर-कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद-मङ्गल-देनी।।
बटु-बिस्वास अचल निज-धर्मा। तीरथ-राज-समाज सु-कर्मा।।
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सारद समन-कलेसा।।
अकथ अलौकिक तीरथ-राऊ। देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ।।

दोहा : सुनि समुझहिं जन मुदित-मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत-तनु, साधु-समाज प्रयाग।।

चौपाई : मज्जन-फल पेषिय तत-काला। काल होहिं पिक बकउ मराला।
सुनि आचरज करइ जनि कोई।। सत-सङ्गति-महिमा नहिं गोई।।

इसी तरह **'अयोध्या-काण्ड'** में **बन-बास** के समय जाते हुए—

...तीरथ-राजु दीख प्रभु जाई।।...चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेश देस अति चारू।।

दोहा : सेवहिं सुकृति साधु सुचि, पावहिं सब मन-काम।
बन्दीं वेद-पुरान-गन, कहहिं विमल गुन-ग्राम।।

को कहि सकहि प्रयाग-प्रभाऊ। कलुष-पुञ्ज कुञ्जर मृग-राऊ।।
अस तीरथ-पति देखि सुहावा। सुख-सागर रघु-बर सुखु पावा।।
कहि सिय लखनहिं सखहि सुनाई। श्री-मुख तीरथ-राज बड़ाई।।
करि प्रनामु देखत बन-बागा। कहत महातम अति अनुरागा।।
एहि विधि आई बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सु-मङ्गल देनी।।
मुदित नहाई कीन्हि सिव-सेवा। पूजि यथा-विधि तीरथ-देवा।।

भगवान् राम के द्वारा पूजित, प्रतिष्ठा-प्राप्त **'त्रिवेणी प्रयाग-राज'** का उक्त वर्णन कितना रोमाञ्चक है! इसी प्रकार जब **भरत** समस्त अयोध्या-वासियों के साथ भगवान् से मिलने चलते हैं, उसका वर्णन भी बड़े सुन्दर ढङ्ग से **'मानस'** में निम्न प्रकार आया है—

एहि विधि भरत सेनु सब सङ्गा। दीखि जाइ जग-पावनि गङ्गा।।
राम-घाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगन मिले जनु रामू।।
करहिं प्रनाम नगर नर-नारी। मुदित ब्रह्म-मय बारि निहारी।।
करि मज्जनु माँगहि कर जोरी। रामचन्द्र-पद-प्रीति न थोरी।।
भरत कहेउ सुर-सरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुर-धेनू।।
जोरि पानि बर माँगउँ एहू। सीय-राम-पद सहज सनेहू।।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए।।
सविधि "सितासित" नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने।।
देखत स्यामल - धवल हलोरें। पुलकि सरीर भरत कर जोरें।।
सकल काम-प्रद तीरथ-राऊ। वेद-विदित जग-प्रकट प्रभाऊ।।
माँगऊँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।।
अस जियँ जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग-जाचक-बानी।।

दोहा : अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरवान।
जनम-जनम रति राम-पद, यह बरदानु न आन।।

भरत-वचन-सुनि माँझ त्रिबेनी, भइ मृदु-बानि सु-मङ्गल-देनी।।
तात भरत! तुम्ह सब विधि साधू। राम-चरन-अनुराग अगाधू।
वादि गलानि करहुँ मन माहीं, तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं।।

दोहा : तन पुलकेउ हिय हरषु सुनि, बेनि - बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिं फूल।।

'शताध्यायी' में 'प्रयाग-राज' का वर्णन

'शताध्यायी' में **'त्रिवेणी'** एवं **'प्रयाग-राज'** का वर्णन आया है। यथा—

तीर्थं हि द्वि-विधं प्रोक्तं, कामदं मोक्षदं तथा। कामदं मोक्षदं नैव, मोक्षदं कामदं न च।।२४
तत्रापि सर्व-तीर्थानि, तीर्थ-राजाज्ञया बिना। काम-दाने मोक्ष-दाने, समर्थानि भवन्ति न।।२५
अथोच्यते तीर्थ-राज, प्रयाग सर्वतोऽधिकः। तस्य शृण्वन्तु माहात्म्यं, मुनयः सनकादयः।।२८

'प्रणव'-रूप प्रयाग-राज का निरूपण

अर्थात् **'तीर्थ'**— कामना या मोक्ष देनेवाले होते हैं, परन्तु **'प्रयाग-राज'**— चारों पुरुषार्थ देते हैं एवं सभी मनोरथों को पूरा करके मोक्ष प्रदान करते हैं। **प्रणव-रूप** में भी **'प्रयाग-राज'** को निरूपित किया गया है। यथा—

अकारः शारदा प्रोक्ता, प्रद्युम्न तस्य देवता। उकारो यमुना प्रोक्ता, निरुद्धस्तज्जलात्मकः।।१३
मकारो जाह्नवी गङ्गा, तत्र सङ्कर्षणो हरिः। एवं त्रिवेणी विख्याता, वेद-बीजं निरूपिता।।१४

अर्थात् **'अ'-कार— सरस्वती-रूप** से, **'उ'-कार—यमुना-रूप** से तथा **'म'-कार—गङ्गा-रूप** से है। **त्रिवेणी** ही **'प्रणव'** (ॐ) रूप है। हठ-योग में **इड़ा, पिङ्गला** एवं **सुषुम्णा** की **'त्रिवेणी' आज्ञा-चक्र** के समीप मानी गई है। शास्त्र में **'त्रिवेणी'** को इस प्रकार की महत्ता देनेवाले अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं, जो समस्त जन-मानस पर अनादि-काल से छाए हैं।

❖ **'कुल-वाणी-रत्न' पं० गोविन्दशरण उपाध्याय, प्रयाग-राज** (उ०प्र०)

'कुम्भ'-विभूषित 'प्रयाग-राज'

'कुम्भ'-शब्द का तात्पर्य बड़ा विलक्षण है। **'कुं'—पृथ्वीं पूरयति इति 'कुम्भः'** अर्थात् जो पृथ्वी को परिपूर्ण कर दे, वही **'कुम्भ'** है। पृथ्वी को पूर्ण करनेवाला **'जल'** है, जो **'अमृत'** का सूचक है। इस प्रकार **अमरत्व** से विभूषित **तीर्थ-राज प्रयाग** का वास्तविक परिचय देने के लिए ऋषियों द्वारा इस पवित्र नगरी को **'कुम्भ'-पर्व** से विभूषित किया गया है। **'कुम्भ'-पर्व** पवित्र भारत देश के तीन अन्य पवित्र नगरों में भी मनाया जाता है, किन्तु **तीर्थों के तीर्थ प्रयाग-राज** का **'कुम्भ'-पर्व** अपने ढङ्ग का निराला ही है।

'तीर्थ-राज' का अपना नाम **'प्रयाग'** भी विलक्षण अर्थ-सूचक है। **'प्रकृष्ट'** अर्थात् श्रेष्ठ **'याग'** जहाँ हों, उसे **'प्रयाग'** कहते है। इस श्रेष्ठ नगरी में अनादि काल से तीन पतित-पावनी नदियों का **'सङ्गम'** अवस्थित है। ये नदियाँ हैं— **१ गङ्गा,** २ **यमुना** और **३ सरस्वती,** जो **'कर्म-भक्ति-ज्ञान'** की सूचिका हैं। **सरस्वती** की धारा गुप्त है, तो **'ज्ञान'** भी गुप्त ही रहता है। कौन नहीं जानता कि ज्ञानियों को खोज करनी पड़ती है। सच्चा ज्ञानी तो छिपा ही रहता है, वह अपना प्रदर्शन नहीं करता। **'गङ्गा'** अपनी जल-धारा की पवित्रता से जीवों को उनके कर्म-फल से मुक्ति दिलाती है, तो **'यमुना'** गोपियों की भक्ति का सन्देश देती हुई **'भक्ति'** के मार्ग का प्रदर्शन करती है। **'त्रिवेणी'-सङ्गम** का यह रहस्य-पूर्ण अर्थ समझना ही **'कुम्भ'-पर्व** के विशाल आयोजन का लक्ष्य रहा है।

इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भिक चरणों में, जब भौतिकता अपने चरम उत्कर्ष के सन्निकट है, **'तीर्थ-राज' प्रयाग** में मानव समाज के आदिम स्वरूप से लेकर आधुनिक रूप तक की झलक देखने को मिल जाती है। एक ओर आवरण-विहीन **नागा साधुओं** के पवित्र दर्शनों से **निराकार निर्गुण निरपेक्ष पर-ब्रह्म की सत्ता** की अनुभूति होती है, तो दूसरी ओर विशाल गज-राज के ऊपर स्वर्ण और रजत के हौदों पर विराजमान **जगद्-गुरु शङ्कराचार्यों** के ऐश्वर्य-पूर्ण दर्शनों से **महा-माया प्रकृति के लीला-विलास** का परिचय मिलता है। भिखारियों, लूले-लंगड़ों, कुष्ठ-रोगियों की पंक्तियाँ **पीड़ित मानवता** के प्रति दया की भावना उत्पन्न करती हैं, तो राजसी वाहनों पर सवार विविध प्रकार के वस्त्रों-आभूषणों से सुसज्जित नर-नारियों का कोलाहल **मानव-स्पर्धा** का अनुभव कराता है। एक ओर रेत पर बनी झोपड़ियों में **दण्डी संन्यासियों** का दर्शन एवं फूस या कपड़ों की झोपड़ियों में अल्प-साधनों से प्रचण्ड शीत काल में **'कुम्भ'-पर्व के व्रतों का पालन करनेवाले कल्प-वासियों** का अवलोकन भारतीय ऋषियों की **'तपस्या'** की अनुभूति कराता है, तो दूसरी ओर राजसी शिविरों में आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न महानुभावों का रहन-सहन **'राज-योग'** की झलक दिखाता है।

'प्रयाग-राज' के विराट् और विलक्षण **'कुम्भ'-पर्व** के उक्त विविधात्मक दृश्य को देखकर सामान्य जन चकित हो जाते हैं, किन्तु विचार-शील मनीषियों का ध्यान इस पवित्र क्षेत्र के पुरातन इतिहास के प्रति चला जाता है और वे **'तत्त्व-ज्ञान'** का अनुभव कर पुलकित होते हैं।

* * *

'प्रयाग' में 'गङ्गा'-स्नान की महिमा

'गङ्गा' भारत की सर्वाधिक **पवित्र नदी** ही नहीं है, देश के विभिन्न प्रदेशों के निवासियों को आत्मा को एक सूत्र में सङ्गठित रखनेवाली सबसे **प्रभावी शक्ति** भी रही है। **हिमालय** से लेकर **सागर** तक प्रवाहित उसकी उज्ज्वल धारा के किनारे उपस्थित कितने ही ऐसे केन्द्र बनते गए हैं, जहाँ विभिन्न भाषा-भाषी लोग निरन्तर एकत्र होते रहे हैं और **भारतीय संस्कृति** को पुष्ट करते रहे हैं। उसके जल को बहु-संख्यक नहरों और बाँधों के द्वारा विस्तृत भू-भाग में फैलाकर और नियन्त्रित कर **भौतिक समृद्धि** के कितने ही द्वार खोले गए। यहाँ तक कि उसकी धारा नाम मात्र को रह गई है। यही नहीं, भौतिक लाभ की दृष्टि से अन्धाधुन्ध कारखाने खोलकर और उनके दूषित रासायनिक द्रवों को उसकी धारा में मिलाया गया और तटीय नगरों एवं ग्रामों के दूषित जल को भी उसी में गिराया गया—यहाँ तक कि उसके निर्मल रोग-नाशक जल में प्रदूषण की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई। फिर भी उसकी **'आध्यात्मिक शक्ति'** में कोई कमी नहीं आई है। वह **भारत की एकात्मकता** को पुष्ट ही करती रही और आज भी कर रही है।

''गङ्गा'' की उक्त विशेषता का कारण भारतीय ऋषियों की वह **दूर-दृष्टि** है, जिसने **''गङ्गा''** की प्रतिष्ठा भारतीय जन-मानस में एक नदी के रूप में नहीं— एक **'देवी'** के रूप में की है। कौन नहीं जानता कि **गङ्गा देवी** ने नदी के रूप में **भगवान् विष्णु** के चरणों के प्रक्षालित जल से जन्म लिया और **राजा भगीरथ** की तपस्या के फल-स्वरूप उनका अवतरण पहले **भगवान् शङ्कर** के जटा-जूट में हुआ, फिर वे वहाँ से उतर कर भारत की धरती पर आईं। **भगीरथ** के पूर्वज **राजा सागर** के मृत पुत्रों को मुक्ति उन्हीं के जल से मिली।

भारतीय ऋषियों द्वारा रचित साहित्य से ज्ञात होता है कि **हिमालय** के **कैलास पर्वत** पर खड़े **भगवान् शङ्कर** की जटाओं में **गङ्गा देवी** ने **वैशाख शुक्ला तृतीया** के दिन अवतरण किया था और वहाँ से वे भारत की भूमि पर **ज्येष्ठ मास** के **शुक्ल पक्ष** की **दशमी** को उतरी थीं। यही कारण है कि उस दिन **''गङ्गा-दशहरा''** का उत्सव भारतीयों द्वारा बड़ी श्रद्धा और उमङ्ग के साथ मनाया जाता है।

ऋग्वेद में एक **''नदी-सूक्त''** है, जिसमें भारत की नदियों की **देवी-रूप में स्तुति** की गई। वहाँ सबसे पहले **''गङ्गा''** का ही स्मरण किया गया है। **'महा-भारत'** और **'पद्म-पुराण'** आदि पुराणों में **'गङ्गा की महिमा'** और पापियों को पवित्र करनेवाली उसकी असीम शक्ति का विस्तार से वर्णन है। **'स्कन्द-पुराण'** में **''गङ्गा''** के **सहस्र-नामों** का उल्लेख है। **'विष्णु-पुराण'** के अनुसार **गङ्गा** का नाम लेने या सुनने, उसे देखने, उसका जल पीने, छूने, उसमें स्नान करने या सौ योजन की दूरी से भी उसके नाम का उच्चारण मात्र करने से तीन जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। **'भविष्य, मत्स्य, गरुड़, वाराह'** आदि पुराणों में घोषित किया गया है कि

हरिद्वार, प्रयाग और **गङ्गा** के समुद्र में मिलने (सङ्गम) के स्थान **(गङ्गा-सागर)** में स्नान करने से मनुष्य को आवागमन से छुटकारा मिल जाता है।

'गङ्गा' की पवित्र करने की शक्ति यहाँ तक मानी गई है कि अविश्वासी और नास्तिक व्यक्ति भी यदि संयोग-वश **गङ्गा** के निकट मरता है या उसका अन्तिम अवशेष **गङ्गा** की धारा में प्रवाहित होता है, तो उसके पाप विनष्ट हो जाते है और उसे **सद्-गति** मिलती है।

श्रीमद्-भगवद्-गीता में **भगवान् कृष्ण** अपने विराट् स्वरूप का दर्शन जब अर्जुन को कराते हैं और अपने अन्य प्रत्यक्ष विग्रहों का वर्णन करते हैं, तो वे स्पष्ट कहते हैं कि **''नदियों में मैं गङ्गा हूँ।''** भारतीय समाज में किसी भी **देवी-देवता की पूजा** हो या **भवन-निर्माण, गृह-प्रवेश** या किसी प्रकार का **आयोजन** हो, उसके प्रारम्भ में जल छिड़क कर स्थान या व्यक्तियों को शुद्ध किया जाता है। उस समय कुएँ, तालाब, नल या किसी भी नदी का जल उपलब्ध हो, उसमें **तीर्थों का आवाहन** करने का जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह **''गङ्गा''** के ही नाम से प्रारम्भ होता है। यथा — **''ॐ गङ्गे च यमुने''** इत्यादि।

'तीर्थ-राज' प्रयाग में **'गङ्गा'-स्नान** का सब स्थानों से अधिक महत्त्व माना गया है। कहा है कि सैकड़ों पाप करनेवाला व्यक्ति भी यदि **प्रयाग** में **गङ्गा-स्नान** कर लेता है, तो उसके सभी पाप दूर हो जाते हैं। **गङ्गा** में स्नान करने या उसका जल पीने से पूर्वजों की सात पीढ़ियाँ मुक्त हो जाती हैं। मृत मनुष्य की अस्थियाँ जितने समय तक **'गङ्गा-जल'** में रहती हैं, उतना ही अधिक उसकी आत्मा को पर-लोक में शान्ति और प्रतिष्ठा मिलती है।

'गङ्गा' की मूल धारा **'स्वर्ग'-लोक** में प्रतिष्ठित है, जिसका नाम है—**''मन्दाकिनी''**। **पृथ्वी की गङ्गा—''भागीरथी''** नाम से प्रसिद्ध है और उसकी तीसरी धारा पाताल में पहुँची है, जिसे **''भोगवती''** नाम से जानते हैं। इस प्रकार पापियों को पाप से मुक्त करने के लिए **गङ्गा देवी— तीनों लोकों** में विद्यमान हैं।

गङ्गा में स्नान करते समय **गङ्गा के नामों का उच्चारण** करना चाहिए। **गङ्गा की मिट्टी** और **जल** को हाथों में लेकर **प्रार्थना** करनी चाहिए कि आप मेरे पापों को दूर करें, जिससे मैं इस लोक में प्रतिष्ठा पाकर पर-लोक में अच्छा स्थान पाऊँ। **पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए हाथ में कुशा** (दर्भ), **पुष्प-अक्षत आदि लेकर सूर्य भगवान् के सम्मुख गङ्गा की धारा में अर्पित करना चाहिए** और यह कामना करनी चाहिए कि इस **'तर्पण'** द्वारा **'पितर'**-लोग तृप्त हों।

'गङ्गा' के तट पर खड़े होकर, जो दूसरे स्थानों की प्रशंसा करते हैं या मन में ओछे विचार-विमर्श करते हैं, उन्हें दोष लगता है। फल-स्वरूप इस संसार में कष्ट पाते हैं और मरने पर नरक में जाकर दुःख भोगते हैं। **गङ्गा में नित्य स्नान** करने से **स्वास्थ्य लाभ** तो होता ही है, **पुण्य** भी मिलता है। **शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा** को स्नान करने से फल नित्य के **सामान्य स्नान** से सौ गुना अधिक फल होता है। संक्रान्ति के अवसर पर **'गङ्गा'-स्नान का फल** सहस्र गुना अधिक पुण्य-दायक होता है। **'कुम्भ'-पर्व** के अवसर पर **'गङ्गा'-स्नान** का महत्त्व

कितना अधिक है, इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस काल में **गङ्गा देवी** का विधिवत् **ध्यान** करना चाहिए। इस सम्बन्ध में **भविष्य-पुराण** का निम्न-लिखित श्लोक मनन करने योग्य है—

सित-मकर-निषण्णां, शुक्ल-वर्णां त्रि-नेत्राम्। कर-धृत-कमलोद्यत-सूत्पलाऽभीत्यभीष्टाम्।।

विधि-हरि-हर-रूपां, सेन्दु-कोटीर-चूड़ाम्। कलित-सित-दुकूलां, जाह्नवीं तां नमामि।।

अर्थात् गङ्गा देवी श्वेत रङ्ग के मगर पर विराजमान हैं। वे गौर वर्ण की हैं। उनके तीन नेत्र हैं। चार हाथों में १ श्वेत कमल, २ रक्त कमल, ३ अभय और ४ वर धारण किए हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश— तीनों की कान्ति उनके स्वरूप में दिखाई देती है। उनके केश-पाश पर चन्द्रमा प्रकाशमान है। सुन्दर श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली इस प्रकार की उन जाह्नवी—**गङ्गा देवी** को मैं नमस्कार करता हूँ।

गङ्गा के मन्त्र और **ध्यान-पूजनादि** का विस्तृत विधान **तन्त्र-शास्त्र** में मिलता है, जो बड़ा ही लाभकारी है क्योंकि जब सामान्य दर्शनादि से इतना फल मिलता है कि—

दृष्टा तु हरते पापं, स्पृष्टा तु त्रि-दिवं नयेत्। प्रसङ्गेनापि या गङ्गा, मोक्षदा त्ववमाहिता।।

अर्थात् देख लेने से पाप दूर करती हैं, छू लेने से स्वर्ग पहुँचाती हैं और स्नान कर लेने से मोक्ष प्रदान करती हैं, तो विधि-पूर्वक **गङ्गा देवी** की उपासना करनेवाले को क्या दुर्लभ रहेगा! उसे सब कुछ प्राप्त हो जाएगा।

गङ्गा देवी की इसी महिमा से प्रभावित होकर भारत की कोई भी नदी या जलाशय हो, उसमें स्नानादि करते समय भारतीय लोग **गङ्गा का ही नाम** लेते हैं और इस प्रकार सारे देश-वासी एकात्मकता के सूत्र में सहज ही आबद्ध हो जाते हैं।

'तन्त्र-शास्त्र' के अनुसार संक्षिप्त 'गङ्गा'-स्नान-विधि

पहले **'भगवती गङ्गा'** का निम्न-लिखित श्लोक पढ़कर **'ध्यान'** करें—

शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां, शुक्लाम्बर-विभूषितां। शुक्ल-मुक्तावली-मालां, हृदयोपरि-शोभितां।।

श्वेत-माला-धरां देवीं, श्वेताभरण-भूषितां। सदा षोडश-वर्षीयां, ब्रह्मादि-परिसेवितां।।

'ध्यान' करने के बाद निम्न-लिखित मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र का **'जप'** करते हुए **'स्नान'** करें। यथा—

(१) **ॐ ह्री गङ्गायै ॐ ह्री नमः**	(६ अक्षर)
(२) **ह्रीं ॐ गङ्गायै ह्रीं ॐ**	(७ अक्षर)
(३) **ॐ गङ्गायै ॐ**	(५ अक्षर)
(४) **ह्रीं गङ्गायै ह्रीं**	(५ अक्षर)

'तीर्थ-राज' प्रयाग का गौरव

'अमरत्व' का प्रत्यक्ष साक्षी— अक्षय वट

'गङ्गा-यमुना-सरस्वती' के पवित्र **'त्रिवेणी-सङ्गम'** पर **'अमृत के प्रतीक'—'कुम्भ-पर्व'** को अभूतपूर्व समारोह के साथ १२ वर्षों बाद मनाया जाता है। **'तीर्थ-राज प्रयाग'** की महिमा सारे विश्व में प्रख्यात है, किन्तु **'अमरत्व' के प्रत्यक्ष साक्षीभूत 'अक्षय-वट'** के प्रति, जो **'प्रयाग का गौरव'** रहा है, कुछ ही का ध्यान जाता है। **'अमृत'** से भरे हुए **'कुम्भ'** की कुछ बूँदों के गिरने से **'कुम्भ'-पर्व** मनाए जाने की परम्परा इस देश में प्रचलित हुई, इसकी कथा बार-बार कही-सुनी जाती है, यह उचित ही है, किन्तु जो **'अक्षय-वट'** अनादि-काल से **'सङ्गम'** के निकट **'यमुना'** के किनारे आज भी अवस्थित है और जिसके सम्बन्ध में ऋषियों की यह मान्यता रही है कि जब महा-प्रलय होगी और सारी सृष्टि अपार जल-राशि में अन्तर्हित हो जाएगी, तब केवल यही **'अक्षय-वट'** शेष रहेगा और उस अनादि-अनन्त जल के पारावार के ऊपर इसी **अक्षय-वट** की हरित पत्र-शैय्या पर बाल-रूप में **'परमेश्वर'** शयन करते हुए विराजमान रहेंगे, उसके बारे में बहुत कम कहा-सुना जाता है।

बाँध के ऊपर अवस्थित किले के भीतर **'पाताल-पुरी'** के नाम से प्रसिद्ध भू-गर्भीय मन्दिर में अनेक प्राचीन देव-मूर्तियों के साथ ही **'वट-वृक्ष'** के एक तने की प्रतिष्ठा वर्षों से **'अक्षय-वट'** के रूप में रही है और आज भी है। धर्म-निष्ठ तीर्थ-यात्री उसी प्रतीकात्मक **'अक्षय-वट'** की पूजा कर अपने को कृतार्थ मानते रहे हैं, किन्तु उसी किले में विद्यमान जीवन्त **'अक्षय-वट'** का उन्हें पता तक नहीं चल पाता, यह बड़ी विडम्बना की बात है। ५० वर्ष पूर्व **'सरस्वती'**-पत्रिका के यशस्वी सम्पादक **पण्डित देवीदत्त शुक्ल** ने **'प्रयाग-राज के गौरव'** इस **'अक्षय-वट'** के सम्बन्ध में १९५० ई० की **'चण्डी'-पत्रिका** में सम्पादकीय के अन्तर्गत लिखा था कि—

"....लोगों की जो यह धारणा थी कि मुगल-शाही के समय में यह पवित्र-तम **वट-वृक्ष** किले की सीमा के भीतर आ जाने के कारण काट डाला गया था, वह सर्वथा निराधार है। वह या उसका विशेष अंश अपने स्थान पर ज्यों-का-त्यों विद्यमान है। **१५ अगस्त, १९४७** को जब भारत स्वतन्त्र हुआ था, तब यह खबर छपी थी कि किले का असली **'अक्षय-वट'** जनता के दर्शनार्थ खोल दिया गया है। इस खबर को पाकर हजारों नगर-निवासी **'अक्षय-वट' का दर्शन** करने के लिए किले में दौड़ गए, परन्तु वहाँ केवल उसके प्रतीक के ही दर्शन मिले। इस पर हमने लिखा था कि **'अक्षय-वट'** किले के अन्दर विद्यमान है और उसकी खोज होनी चाहिए। वृद्ध-जनों से सुना था कि उक्त पवित्र-तम **'वट-वृक्ष'** किले में विद्यमान है, परन्तु जनता वहाँ तक विशेष कारण-वश जा नहीं सकती।

ऐसे ही आधार पर उसकी **खोज का प्रस्ताव** हमने किया था। उस ओर किसी का ध्यान

नहीं गया। ध्यान गया केवल **पं० शिवनाथ जी काटजू** का, जिन्होंने **'अक्षय-वट'** की बात को लेकर **'प्रयाग'-तीर्थ** के सम्बन्ध में एक खोज-पूर्ण लेख **'लीडर'** में छपवाया। साथ ही वे **'अक्षय-वट'** के अन्वेषण में चुपचाप बराबर लगे रहे। उनका परिश्रम सफल हुआ और **जून, १६५० में आषाढ़ शुक्ला एकादशी** के दिन उन्होंने अपने मित्र किले के अधिकारियों के साथ जाकर कोई साढ़े चार सौ वर्षों के बाद परमाराध्य **'अक्षय-वट' का पूजन** किया और उपस्थित सज्ञनों को प्रसाद बाँटा। उक्त **'अक्षय-वट'** के सम्बन्ध में जो प्रमाण मिले हैं, उनसे यह बात भली-भाँति सिद्ध हो जाती है कि असली **'अक्षय-वट'** यही है, जो अनेक कारणों से पिछले साढ़े चार सौ वर्षों से जनता को **भजन-पूजन** के लिए नहीं मिल रहा है।...."

'अक्षय-वट' की उक्त खोज के सम्बन्ध में **पूज्य शुक्ल जी** ने **अक्टूबर, १६५०** की **'चण्डी'** में एक लेख भी लिखा, जिसका कुछ अंश यहाँ उद्‌धृत करना उपयोगी होगा—

".....प्रयाग के **अक्षय-वट** के सम्बन्ध में जो लेख प्रकाशित हुए, उनका प्रभाव जनता पर तो पड़ा ही, साथ ही प्रान्तीय सरकार पर भी पड़ा। उसने इलाहाबाद के कलेक्टर को आदेश किया है कि वे **'अक्षय-वट'** के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करके उसे सूचित करें।... इस सम्बन्ध की जो लिखा-पढ़ी अब तक हुई है, उससे निम्न बातें प्रकट होती हैं—

(१) इतिहास-ग्रन्थों से यह सिद्ध होता है कि जिस स्थान पर आज किला बना हुआ है, वहाँ पहले एक **विशाल 'वट-वृक्ष'** था तथा बहु-संख्यक **छोटे-बड़े देव-मन्दिर** और तीर्थ-पुरोहितों की एक बस्ती भी थी। सारे देश में उक्त **'वट-वृक्ष'** बड़े आदर के साथ देखा जाता था। यह पुण्य-तम स्थान **११वीं शती से १६वीं शती** के अर्ध-भाग से भी अधिक समय तक ज्यों-का-त्यों अस्तित्व में रहा।

(२) जब से यहाँ किला बना, यहाँ की सारी बस्ती तथा छोटे-बड़े सभी मन्दिर एवं पूज्य विशाल **'वट-वृक्ष'** का पूर्ण रूप से लोप हो गया। बाद को, इस बात का प्रमाण मिलता है कि इस किले के विशाल क्षेत्र के भीतर एक छोटी-सी जगह में हिन्दुओं को **'अक्षय-वट'** तथा वहाँ रखी **देव-मूर्तियों की पूजा** करने की सुविधा प्राप्त थी। यह स्थान कदाचित् तभी से **'पाताल-पुरी'** नाम से प्रसिद्ध है।

(३) किंवदन्तियों से प्रकट है कि **'पाताल-पुरी'** के **'अक्षय-वट' के पूजन की व्यवस्था अकबर के समय से** ही है, परन्तु उस स्थान पर जो मूर्तियाँ हैं, वे आधुनिक हैं।....बलुआंघाट के एक मूर्तिकार से ये मूर्तियाँ बनवाई गई थीं और पुजारी जोगियों ने उन्हें किले में ले जाकर रख दिया है। यह सब लगभग डेढ़ सौ वर्ष के अन्दर ही हुआ है।

(४) जिस **'वट-वृक्ष'** का पता लगाया गया है, उसके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि यह वृक्ष उसी प्राचीन **'वट-वृक्ष'** का अंश-विशेष है।

"....यह तो हुआ प्रकाशित लेखों का सारांश।....यह तो प्रकट ही है कि जो वस्तु **'अक्षय-वट'** के नाम से पूजी जाती है, वह एक कल्पित वस्तु है और उसे जो लोग पूजते

हैं, उनमें से अधिकांश उसकी असलियत को जानते हैं। वे जानते हैं कि यह असली **'वट-वृक्ष'** नहीं है, किन्तु एक सूखी बट-जङ्घा है।....मुख्य बात यह है कि किले के भीतर जहाँ **'अक्षय-वट'** था, एक वृक्ष मौजूद है, जो कम पुराना नहीं है। वह **'अक्षय-वट'** के रूप में पूजने के लिए मिल जाना चाहिए।....''

पूज्य शुक्ल जी के उक्त मन्तव्य के तारतम्य में **भारत के भूत-पूर्व सर्वोच्च न्यायाधीश एम० पतञ्जलि शास्त्री** का कथन भी यहाँ विचारणीय है। **शास्त्री जी** ने **'पाताल-पुरी'** के मन्दिर में वृक्ष के कुन्दे तथा नए खोजे हुए **'अक्षय-वट'** का अंश-वृक्ष देखा और उन्होंने जो कुछ कहा, वह **३ अप्रैल, १९५२** के **'लीडर'** में निम्न प्रकार प्रकाशित हुआ था—

''....जब यह सिद्ध हो गया है कि **पाताल-पुरी** के मन्दिर में जो **'अक्षय-वट'** है, वह लकड़ी का कुन्दा है, जिसे हर तीसरे-चौथे साल सैनिक अधिकारियों की सहायता से बदल दिया जाता है, तब जनता के साथ यह धोखा-धड़ी अब क्यों की जाती है?...नए खोजे हुए वृक्ष की आयु आदि की जाँच के बाद यह प्रमाणित हो गया है कि यह **'अक्षय-वट'** का शेषांश है, तो जनता के दर्शनार्थ इसे खोल देना चाहिए।...''

'अक्षय-वट' के उक्त शेषांश को **पं०शिवनाथ जी काटजू** ने किस प्रकार खोज निकाला, इसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में पढ़ना उद्बोधक होगा। उन्होंने **'अक्षय-वट'** नामक पुस्तिका (सन् १९५५) में लिखा है—

''....किले के विभिन्न स्थानों को मैंने देखा, परन्तु वहाँ वास्तविक **'अक्षय-वट'** का कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़ा।....मैंने मन्दिर के कुछ योगियों से पूछ-ताछ की। एक दिन एक योगी मुझे किले के पीछे **यमुना जी** की ओर लिवा ले गया और किले की दीवार के पत्थरों में खुदे हुए **कमल** की ओर इङ्गित करते हुए बताया कि परम्परागत कथनानुसार वास्तविक **'अक्षय-वट'** इसके समीप होना चाहिए।...**'कमल'**-चिह्न के स्थान से किले के भीतर किसी वृक्ष की चोटी दिखलाई पड़ती थी। दूसरे दिन मैं उस वृक्ष के निकट पहुँचना चाहता था, परन्तु वह स्थान बन्द था।...किले के अधिकारियों को उस वृक्ष तक मार्ग निकालने में लगभग तीन सप्ताह लगे। **२८ जुलाई, १९५०** को **मेजर कुन्दन सिंह** तथा उनके कुछ अफसरों के साथ मैंने सर्व-प्रथम उस वृक्ष को देखा। यह स्थान सड़ी पत्तियों से लगभग एक फीट की गहराई तक ढँका हुआ था और सर्पों से भरा हुआ था। किले के अधिकारियों ने एक मार्ग साफ कराया, जिससे हम वृक्ष के नीचे तक पहुँच गए।...''

प्रयाग विश्व-विद्यालय के वनस्पति-विज्ञान के प्रोफेसर तथा विज्ञान-प्रभाग के अध्यक्ष **डा० रञ्जन** ने सैनिक अधिकारियों के आग्रह से नए खोजे हुए **'अक्षय-वट'** की जाँच की, जिससे यह प्रमाणित हुआ कि यह वृक्ष किले के निर्माण के पूर्व समय का है और जब कि वह पुराने **'अक्षय-वट'** के स्थान पर है, तब यह अवश्य ही उसी का अंश है, इसमें सन्देह नहीं।

'तीर्थ-राज' प्रयाग के प्राचीन-तम **'अक्षय-वट'** के इस जीवन्त स्वरूप की महिमा ने सारे

प्रबुद्ध भारत-वासियों को अभिभूत कर दिया और **सन् १९५४ के 'कुम्भ'-पर्व** में केन्द्रीय सरकार के गृह-मन्त्री **डा० कैलास नाथ जी काटजू** के आदेश पर ऐसी व्यवस्था की गई कि **तीर्थ-यात्री** इस जीते-जागते **'अक्षय-वट'** के पुण्य दर्शन कर सकें और उसका **पूजन-अर्चन** कर अपने को कृतार्थ कर सकें। उस वर्ष **किले की दक्षिणी दीवार के किनारे 'यमुना'-तट से मिला हुआ एक ऐसा मार्ग बनाया गया, जिससे दर्शनार्थी लोग 'अक्षय-वट' के द्वार तक पहुँच सकें।** उस द्वार से किले के भीतर प्रवेश कर लाखों लोगों ने **पवित्र 'अक्षय-वट'** के **दर्शन-पूजन** कर अपने को धन्य माना था, किन्तु उसके बाद फिर वैसी व्यवस्था आज तक नहीं हो पाई। **प्रयाग का गौरव 'अक्षय-वट'** पुनः किले के भीतर छिप गया। आज उसके **'दर्शन-पूजन'** का सौभाग्य या तो किले के भक्त सैनिक अधिकारी-कर्मचारी को मिल पाता है या उन भाग्य-शाली कुछ तीर्थ-यात्रियों को, जो असली-नकली **'अक्षय-वट'** के रहस्य को जानते हैं और आवश्यक अनुमति लेकर किले के उस निषिद्ध क्षेत्र में पहुँचने का प्रयास करते हैं, जहाँ उक्त पवित्र **'अक्षय-वट'** विराजमान है।

'प्रयाग-राज' के इस **ऐतिहासिक पुरातन 'अक्षय-वट' की गरिमा** इसी बात से स्पष्ट है कि **ब्रह्मर्षि भरद्वाज** के निर्देशानुसार **भगवती सीता** ने इस **पवित्र वृक्ष की पूजा-प्रदक्षिणा** उस समय की थी, जब वे **भगवान् राम** और **वीर-वर लक्ष्मण** के साथ **चित्र-कूट** की ओर जा रही थीं। **वाल्मीकि रामायण** के **'अयोध्या-काण्ड'** में **भरद्वाज ऋषि भगवान् राम** से कहते हैं कि—

ततो न्यग्रोधमासाद्य, महान्तं हरितच्छदम्। परीतं बहुभिः वृक्षैः, श्यामं सिद्धोपसेवितम्।।

तस्मिन् सीताऽजञ्लिं कृत्वा, प्रयुंजीताशिषां क्रियाम्। समासाद्य च तं वृक्षं, वसेद् वाति-क्रमेत वा।।

अर्थात् वहाँ से आगे श्याम वट-वृक्ष मिलेगा। उसके पत्ते हरे हैं, उस वृक्ष में अनेक वृक्ष मिले हैं और वहाँ सिद्ध पुरुष रहते हैं। उस वृक्ष से सीता हाथ जोड़कर आशीर्वाद माँगना और वहाँ तुम लोग कुछ ठहर जाना या आगे बढ़ जाना।

'यमुना' को पार करने के बाद जब वह वृक्ष दिखाई पड़ा, तब **'सीता-राम-लक्ष्मण'** ने क्या किया, इसका वर्णन भी **महर्षि वाल्मीकि** के शब्दों में निम्न प्रकार मिलता है—

श्यामं न्यग्रोधमासेदुः, शीतलं हरितच्छदम्। न्यग्रोधं समुपागम्य, वैदेही च अभ्यवन्दत्।।

नमस्तेऽस्तु महा-वृक्ष! पारयेन्मे पति-व्रतम्। कौसल्यां चैव पश्येम, सुमित्रां च यशस्विनीम्।।

अर्थात् वे लोग शीतल तथा हरे पत्तोंवाले **'श्याम-वट'** के पास पहुँचे। उस **'वट-वृक्ष'** के पास जाकर **सीता जी** ने उसे **प्रणाम** किया और कहा—**'हे वट! तुमको नमस्कार। मेरे पति-व्रत को तुम पूर्ण करना। कौसल्या और यशस्विनी सुमित्रा को हम लोग देखें।'**

सन् ६४३ में **महाराज हर्षवर्धन** के साथ **चीनी पर्यटक-लेखक ह्वेनसांग** प्रयाग आया था। उसने अपने **'यात्रा'-वर्णन** में लिखा है कि—

''राजधानी प्रयाग में पूजित देव-मन्दिर के समीप बहुत दूर तक फैला हुआ एक बड़ा वृक्ष है।

नदियों के सङ्गम पर मन्दिर के पूर्व की ओर सफेद बालू से ढँका हुआ विशाल मैदान है।''

महमूद गजनवी के साथ आए मुस्लिम यात्री **अलबरूनी** ने भी अपने **'यात्रा'-वर्णन** में स्पष्ट लिखा है कि—**'यमुना-गङ्गा के सङ्गम पर, जिसे प्रयाग कहते हैं, एक बड़ा वृक्ष है; जिसे 'वट-वृक्ष' कहते हैं।'**

सन् १३१० में लिखित **'जामुन तवारीख'** में मुस्लिम इतिहासकार **रशीदउद्दीन** द्वारा भी **यमुना-गङ्गा के सङ्गम** पर अवस्थित **'प्रयाग'** के इस **'वट-वृक्ष'** का वर्णन किया गया है।

सत्रहवीं शताब्दी में आविर्भूत **गोस्वामी तुलसीदास** ने **पवित्र अक्षय-वट** का उल्लेख अपने **'राम-चरित-मानस'** में मार्मिक शब्दों में किया है। यथा—

देव-दनुज-किन्नर-नर - श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी।।
पूजहिं माधव-पद-जल-जाता। परसि 'अक्षय-वट' हरखहिं गाता।।
सङ्गम-सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अक्षय-वट मुनि-मन मोहा।।

उक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से प्रमाणित है कि पुरातन जीवन्त **'अक्षय-वट'** के बिना **प्रयाग-राज** के **'त्रिवेणी-सङ्गम'** की भावना पूर्ण रूप से की ही नहीं जा सकती है। **'अक्षय-वट' के दर्शन-पूजन** के बिना यहाँ के **'कुम्भ'-पर्व** का सारा आयोजन 'आधा-अधूरा'-सा है।

विशेष— 'अक्षय-वट' के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए कृपया **कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज** से प्रकाशित पुस्तिका **'अक्षय-वट'** (मूल्य ५-००) देखें।

'अक्षय'-वट के सान्निध्य में श्री बड़े हनुमान जी

'प्रयाग-राज' में **'अक्षय'-वट** के सान्निध्य में किले के पास **'श्री बड़े हनुमान जी का सिद्ध स्थान'** है। यहाँ **'पातालपुरी'** का चित्रण करते हुए **श्री हनुमान जी की विशाल मूर्त्ति** भूमि के सामान्य स्तर से कुछ नीचे है, जिससे प्रायः लोग इन्हें **'लेटे हुए हनुमान जी'** भी कहते हैं। वास्तव में यहाँ **हनुमान जी** के उस विशाल स्वरूप का दर्शन होता है, जिसने **'पाताल'** में जाकर **मूर्छित राम-लक्ष्मण** को **'अहिरावण'** के बन्धन से मुक्त किया था।

यह **'हनुमान-तत्त्व'** का विलक्षण चिन्तनीय पक्ष है, जिधर बहुत कम लोगों का ध्यान आकृष्ट होता है।

इन **श्री बड़े हनुमान जी** के बाँऐं पैर के नीचे **'पाताल की देवी'— 'कामदा'** दबी हुई हैं। दाहिने पैर के नीचे **'अहिरावण'** दबा पड़ा है। दाहिनी भुजा के नीचे **'मकर-ध्वज'** है। दाहिनी भुजा में **'गदा'** है। बाँऐं हाथ से आप **श्रीराम-लक्ष्मण** को सँभाले हुए हैं।

आज यह मन्दिर **'सङ्गम'-क्षेत्र** का सर्वाधिक जाग्रत स्थान है। **'कुम्भ-पर्व'** पर यहाँ श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता है। जो भी **'सङ्गम'-स्नान** करने जाता है, वह लौटते समय आपसे आशीर्वाद अवश्य लेता है।

'तीर्थ-राज' प्रयाग के प्राचीन स्थान

(१) **सोम-तीर्थ—** यहाँ **'सोमेश्वर शिव'** की स्थापना है। यह स्थान सभी कामनाओं को पूरा करने के लिए प्रसिद्ध है। **'गङ्गा-यमुना-सरस्वती'** के **'सङ्गम'**-स्थल के पास स्थित **'सोमेश्वर महादेव मन्दिर'** का स्थान कभी अनेक वृक्षों-लताओं से सुशोभित था। इस स्थान पर **'ॐ नमः शिवाय'** आदि शिव-मन्त्रों का **'जप'** सत्त्वर फल-दायी है।

सोम-तीर्थ के पश्चिम में **'सूर्य'-तीर्थ** है, कुबेर का **'दानद'-तीर्थ, 'वायु'-तीर्थ, 'अग्नि'-तीर्थ, 'धर्म-राज'-तीर्थ** हैं। उत्तर भाग में **'वीर-तीर्थ** है, जहाँ स्नान करने से मनुष्य शूर-वीर होता है। इसी के पास **'वेणी-माधव'** का आश्रम है। उसके उत्तर में **'वरुण'-तीर्थ, 'राम'-तीर्थ, 'सीता'-कुण्ड** और **'हनुमान'-तीर्थ** हैं।

(२) **ब्रह्म-कुण्ड—** यह **'नाग-वासुकि'-मन्दिर** के दक्षिण गङ्गा के पश्चिमी किनारे पर है। यह स्थान नाना प्रकार की बाधाओं का नाश करनेवाला है। यहाँ **'स्नान'** करने के बाद **'पितरों का तर्पण'** करना चाहिए।

(३) **'दशाश्वमेध'-घाट—** **'ब्रह्म-कुण्ड'** के दक्षिण तथा गङ्गा के पश्चिमी तट पर **'दशाश्वमेध'-घाट** है। यहाँ **ब्रह्मा जी** ने सृष्टि प्रारम्भ करने हेतु **'यज्ञ'** किया था। यहाँ **'गङ्गा'** में स्नान करने से पाप नष्ट होते हैं और मन निर्मल हो **श्रीमाधव-भक्ति** में अनुरक्त हो जाता है।

(४) **'विकिर'-क्षेत्र—** **'गङ्गा-यमुना'** के **'सङ्गम'** के उत्तरी भाग में **पाप-नाशक 'विकिर'-क्षेत्र** है। इसे **'षट्-कूल'-क्षेत्र, 'पुण्य'-क्षेत्र** भी कहते हैं। इसी क्षेत्र में प्रति वर्ष **'माघ'-मास में 'माघ'-पर्व का आयोजन** होता है। यहाँ **यमुना जी— गङ्गा का स्वागत** करती हैं और यहाँ से उनके लिए आगे का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इसीलिए यह क्षेत्र **'विकिर'—पाप-नाशक** कहलाता है। इसी स्थान पर **ब्रह्मा जी** द्वारा सम्पादित **यज्ञ की सामग्रियाँ** बिखरी पड़ी हुई थीं। अतएव यह **'विकिर'-क्षेत्र** कहलाया। यहाँ **'दर्शन', 'स्नान'** और **'वास'** का अनन्त फल है। यहाँ प्रति वर्ष **'माघ'-पर्व**, छः वर्ष पर **'अर्द्ध-कुम्भ'-पर्व** एवं बारह वर्ष पर **'कुम्भ'-पर्व** का आयोजन होता है। यह क्षेत्र **'श्राद्ध'-कर्म** करने के लिए भी प्रसिद्ध है।

(५) **आदि-वेणी—** **'अक्षय'-वट** के दक्षिण में **'आदि-वेणी'** का स्थान है। **'प्रयाग'** की **'आदि'-वेणी** में **जप, दान** का अनन्त फल है।

(६) **घृत-कुल्या-तीर्थ** और (७) **मधु-कुल्या-तीर्थ—** **'आदि'-वेणी** के पश्चिम में **'घृत-कुल्या-तीर्थ'** और उससे आगे **'मधु-कुल्या-तीर्थ'** हैं। जब **ब्रह्मा जी** ने **'प्रयाग'** में **यज्ञ** किया था, तब **'यज्ञ'-कार्य हेतु 'घृत'** और **'मधु'** की दो नदियाँ भी बनाई थीं। यहाँ स्नान कर **'तर्पण'** करने से **देवता** और **पितर** प्रसन्न होते हैं।

(८) **'आदित्य'-तीर्थ—** **'मधु-कुल्या'-तीर्थ** के पश्चिम में **'आदित्य'-तीर्थ** है, जहाँ **इन्द्रादि देवताओं का निवास** है। यहाँ **सूर्य भगवान् की उपासना** प्रशस्त है।

(९) **ऋण-मोचन-तीर्थ—'आदित्य'-तीर्थ** के पश्चिम में **'ऋण-मोचन'-तीर्थ** है, जहाँ **देवता, पितर** और **ऋषि-गण** निवास करते हैं। यह तीर्थ **परम पवित्र** और **ऋण-नाशक** है। यहाँ **'पूर्णिमा'-तिथि में स्नान, दान, जप, पूजा का विशेष महत्त्व** है।

(१०) **पाप-मोचन-तीर्थ— 'ऋण-मोचन-तीर्थ'** के पश्चिम में **'पाप-मोचन-तीर्थ'** है। यहाँ स्नान आदि से **ज्ञात-अज्ञात सभी पापों का नाश** होता है।

(११) **'राम-तीर्थ'— 'पाप-मोचन'-तीर्थ** के पश्चिम में **'राम-तीर्थ'** है, जिसे **जामदग्न्य ऋषि** ने प्रतिष्ठित किया था। **भगवान् परशुराम** ने इस तीर्थ में स्नान कर मातृ-हत्या के पाप से मुक्ति पाई थी। **भगवान् परशुराम** ने अपने पिता की आज्ञा से अपनी **माता रेणुका** का वध किया था। **जमदग्नि परशुराम** पर प्रसन्न हुए थे और उनसे वर माँगने के लिए कहा था। **भगवान् परशुराम** ने वर में **माता रेणुका** को माँगा। **जमदग्नि** ने **परशुराम की माता** को जीवित कर दिया। इस प्रकार **'प्रयाग'** के **राम-तीर्थ** में स्नान कर **भगवान् परशुराम** ने मुक्ति पाई थी। यहाँ **भगवान् परशुराम का शाश्वत निवास** बताया जाता है।

(१२) **'सरस्वती'-कुण्ड—** यहाँ **'परशुराम'** के आग्रह पर **'सरस्वती' देवी, 'राम-तीर्थ'** के पास **'सरस्वती-कुण्ड'**-नामक तीर्थ में निवास करती हैं।

(१३) **'गो-वट्टन'-तीर्थ—'सरस्वती'-कुण्ड** के पास **'गो-वट्टन'-तीर्थ** है। इसका निर्माण **भगवान् परशुराम** द्वारा दान में दी गई गायों के जम-घट से हुआ था।

(१४) **'पिशाच-मोहन'-तीर्थ—'गो-वट्टन-तीर्थ'** के पास है। यहाँ **'स्नान-दान'** से **प्रेत-बाधा** नष्ट होती है। परिवार में यदि कोई **'प्रेत'-योनि** प्राप्त करता है, तो उसकी भी यहाँ **मुक्ति** दान-आदि से होती है।

(१५) **काम-तीर्थ (मन-कामेश्वर मन्दिर)— 'पिशाच-मोचन-तीर्थ'** के पश्चिम में **'काम-तीर्थ'** है। जहाँ **'मनकामेश्वर महा-देव'** का निवास है। **'मनकामेश्वर मन्दिर'—'सरस्वती'-घाट** में **यमुना के किनारे** है। यहाँ **'स्नान'** से मनो-कामनाओं की पूर्ति होती है। यहाँ बैठ-कर सीधे **'सङ्गम'** पर दृष्टि-पात किया जा सकता है। यहाँ के घाट पर जल सदा रहता है। **साधना की दृष्टि से यह स्थान अत्यन्त उपयुक्त** है।

'सङ्गम' से पाँच कोस की परिधि में अनेक **'तीर्थ'** हैं, जिन्हें **'पञ्च-कोशी' के अन्तर्गत देव-स्थान** माना जाता है। पूर्व दिशा में **ककरा-कोटवा गाँव** में **'श्रीदुर्वासा मुनि का आश्रम'** है। पश्चिम में **'बल-खण्डी शिव'** हैं। दक्षिण में—पनासा के पास **'पर्णम मुनि का आश्रम'** है और उत्तर में **'पड़िला महादेव का मन्दिर'** है।

(१६) **'समुद्र'-कूप**—यह **'प्रयाग'** के पूर्वी भाग में **गङ्गा** के तट पर **प्रतिष्ठानपुरी (झूँसी)** में है। इसकी चर्चा **'मत्स्य-पुराण'** में है।

(१७) **'हंस'-कूप— 'मत्स्य पुराण'** में इस तीर्थ की भी चर्चा है। यह **'प्रयाग'** में **'गङ्गा'** के पूर्वी तट पर स्थित **प्रतिष्ठानपुरी के उत्तरी भाग** में है। **'हंस'-कूप** से थोड़ी ही दूर पर **'हंस-तीर्थ'-नामक तान्त्रिक स्थान** है, जिसका विस्तृत विवरण प्रस्तुत अङ्क में दिया गया है।

(१८) **'कोटि'-तीर्थ (शिव-कुटी)— 'प्रयाग'** के उत्तरी भाग में **'कुबेर'-तीर्थ, 'नाग'-तीर्थ, 'भार्गव', 'गालव'** और **'चामर'-तीर्थ** हैं। इनके पूर्व भाग में **गङ्गा के दक्षिणी तट** पर **'कोटि'-तीर्थ —'शिव'-कुटी** है। **'पद्म'-पुराण,** पाताल खण्ड, ८८वें अध्याय में उक्त तीर्थों का वर्णन है।

यहाँ **भगवान् शिव के मन्त्र का जप, पूजन-अर्चन, पितृ-तर्पण** का फल कोटि गुना होता है। यहाँ आज भी **एक प्राचीन शिव-मन्दिर** विद्यमान है। साधना-ध्यान आदि के लिए यह स्थान भी बहुत उपयुक्त है।

(१९) **'तक्षक'-कुण्ड—'प्रयाग'** में **दरियाबाद मुहल्ले में यमुना के किनारे 'तक्षक'-कुण्ड** है। यहाँ **भगवान् तक्षकेश्वर का मन्दिर** भी है। **'तक्षक'-कुण्ड में स्नान** करने से **विष-बाधा** नहीं होती और **भगवान् तक्षकेश्वर की पूजा** से मनुष्य **धनवान्** होता है।

(२०) **कालिय ह्रद— 'प्रयाग'** में **'तक्षक'-कुण्ड** के पास **यमुना नदी के किनारे 'कालिय'-ह्रद** है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ **कालिय नाग** सुख-पूर्वक रहता है। 'पद्म-पुराण' में कहा गया है कि— **'तक्षक'-कुण्ड** के पास **सर्व-रोग-हर, सर्व-पाप-नाशक पुण्य-दायक 'कालिय'-ह्रद** है।

कहते हैं **'कालिय नाग'** बहुत बलवान था। **गरुड़** के साथ युद्ध में वह हार गया था। जब **गरुड़** ने **कालिय** को हरा कर उसे बाँध लिया, तब वह किसी युक्ति से **गरुड़ के बन्धन** से छुटकारा पाकर **'प्रयाग'** भाग आया और **'यमुना'-ह्रद** में छिप गया। **गरुड़** ने पता लगाना चाहा, किन्तु उसका पता न चला। जब बाद में **गरुड़** को ज्ञात हुआ कि **'कालिय'—विष्णु की शरण में** चला गया है और **'यमुना'-ह्रद** में छुपा है, तब उन्होंने **कालिय का पीछा** छोड़ दिया।

(२१) **पड़िला महादेव—** यह तीर्थ **'प्रयाग' की बहिर्वेदी** में है। यह **'सङ्गम'** से उत्तर दिशा में पाँच कोस पर **'पञ्च-कोशी-परिक्रमा'** में है। प्रवास-काल में **पाँचों पाण्डवों ने यहाँ पर निवास** किया था और **भगवान् शिव की पूजा** की थी। **पाण्डवों द्वारा पूजा** करने के कारण इनका नाम **पण्डेश्वर नाथ—पड़िला महादेव** प्रसिद्ध हुआ। यहाँ **स्नान, दान** करने से **अक्षय फल की प्राप्ति** होती है।

❖ पण्डित शिवकुमार दुबे, 'तीर्थों का तीर्थ प्रयाग'-पुस्तक से साभार

भरद्वाज एवं दुर्वासा मुनि आश्रम

प्राचीन **'प्रयाग-राज'** के चिह्न-स्वरूप **'आधुनिक प्रयाग'** में **'आनन्द भवन'** के पास **भरद्वाज मुनि आश्रम** एवं **'गङ्गा'** के पूर्व की ओर **प्रतिष्ठान पुरी झूँसी** से लगभग ११ कि०मी० दूर **'गङ्गा-तट'** पर **'दुर्वासा आश्रम'** है। ये दोनों आश्रम **भरद्वाज मुनि** एवं **दुर्वासा मुनि** की **तप-स्थली** के रूप में आज भी विद्यमान हैं। जो लोग **'प्रयाग-राज'** आते हैं, वे इन **आश्रमों का दर्शन** अवश्य करते हैं। **श्रीदुर्वासा आश्रम** के पास **माँ ऐन्द्री धाम** भी है, जिसका उल्लेख **'स्कन्द पुराण'** में मिलता है।

'तीर्थ-राज' प्रयाग में विशेष कृत्य

'तीर्थ-राज' प्रयाग में भक्त-जन अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार **'व्रत-जप-पूजा'**-आदि करते हैं। यहाँ की जानेवाली **'व्रत-जप-पूजा'** की मुख्यतया पाँच धाराएँ हैं— **१. 'माघ'-स्नान, २. श्रीललिता-साधना, ३. श्रीगङ्गा-यमुना-प्रयाग-स्तुति, ४. सूर्यार्घ्य-दान, ५. श्रीवेणी-माधव-साधना।** इन पाँचों के सन्दर्भ में यहाँ कुछ विवरण प्रस्तुत है। यथा—

'माघ'-स्नान-विधि

☐ **'माघ'**-मास में प्रातः स्नान करने से सभी महा-पातक दूर होते हैं और **'प्राजापत्य-यज्ञ'** का फल प्राप्त होता है।

☐ **'माघ'**-स्नान करनेवाले को **संयम-नियम** से रहना चाहिए। दुष्ट लोगों के साथ नहीं रहना चाहिए। **'स्नान'** के पूर्व **'सङ्कल्प'** करना चाहिए। यथा— **'ॐ तत्सत्। अद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय-प्रहरार्द्धे, श्वेत-वराह-कल्पे, जम्बू-द्वीपे, भरत-खण्डे, आर्यावर्त्त-देशे, प्रयाग-पुण्य-क्षेत्रे, कलि-युगे कलि-प्रथम-चरणे, 'विजय'-संवत्सरे, माघ-मासे, अमुक-पक्षे, अमुक-तिथौ, अमुक-वासरे, अमुक-गोत्रोत्पन्नो, अमुक-नाम-शर्मा (वर्मा-गुप्तो, दासो) अहं गङ्गा-यमुना-सङ्गमे सरस्वत्या गर्भे श्रीमहादेव-श्रीवेणी-माधव-प्रीत्यर्थं स्नानं करिष्ये।**

☐ उक्त प्रकार से **'गङ्गा'-स्नान** कर मस्तक पर **'गङ्गा'** की रेत लगाकर **'सूर्य भगवान् को जल** द्वारा **अर्घ्य'** देना चाहिए। **'सूर्य को अर्घ्य-दान'** देकर **देवताओं-ऋषियों-पितरों को 'जल-दान'** करना चाहिए। जल से बाहर निकलकर अपने **'इष्ट-देव को प्रणाम'** कर **'प्रयाग'** की अधिष्ठात्री **श्रीललिता देवी** को **'श्रीललितायै नमः'** कहकर प्रणाम करना चाहिए। तब **'शङ्ख-चक्र'-धारी भगवान् वेणीमाधव** का **'श्रीवेणी-माधवाय नमः'** कहकर पूजन करना चाहिए।

☐ **'गङ्गा'-स्नान** करते समय पहले अपने चारों ओर एक **'चौकोर मण्डल'** की कल्पना करे। फिर मन-ही-मन इस प्रकार **'गङ्गा का आवाहन'** करे—**'हे गङ्गे! तुम भगवान् विष्णु के चरणों से प्रकट हुई हो। हे देवि! तुम जन्म से लेकर मृत्यु तक मेरे द्वारा किए गए समस्त पापों से मेरा त्राण करो। हे माता जाह्नवि! सारे तीर्थ तुम्हारे जल में स्थित हैं। देव-लोक में तुम्हारा नाम 'नन्दिनी', 'नलिनी' है। इनके अतिरिक्त 'क्षमा', 'पृथ्वी', 'आकाश-गङ्गा', 'विश्व-काया', 'शिखा', 'अमृता', 'विद्या-धरा', 'सु-प्रसन्ना', 'लोक-प्रसादिनी', क्षेम्या, 'जाह्नवी', 'शान्ता' और 'शान्ति-प्रदायिनी' आदि भी तुम्हारे अनेक नाम हैं। तुम्हें हमारा बारम्बार प्रणाम।**

☐ देवताओं का **'तर्पण'** करते समय **यज्ञोपवीत** को बाँएँ कन्धे पर डाले रहे, फिर उसे गले में माला की भाँति कर ले और **ऋषियों** का भक्ति-पूर्वक **'तर्पण'** करे। पुनः **यज्ञोपवीत** को दाएँ कन्धे पर रखकर बाँएँ घुटने को पृथ्वी पर टेक कर बैठे और हाथों में कुश लेकर पवित्र **'गङ्गा'-जल** से परलोक-वासी **पितामह-मातामह** आदि का **नाम-गोत्र का उच्चारण** करते हुए **'तर्पण'** करे।

☐ **'माघ'-मास** में **तिल का उबटन, तिल-मिश्रित** जल से **स्नान, तिलों से पितृ-तर्पण, तिल का हवन, तिल का दान** और **तिल से बनी हुई सामग्री का भोजन** करना चाहिए। * * *

प्रयागे तु ललिता

श्रीललिता-महा-लक्ष्मी-नाम-साधना

[**'तीर्थ-राज प्रयाग'** की अधिष्ठात्री **भगवती ललिता** हैं। **'प्रयाग'** में **भगवती ललिता** के **'स्मरण-चिन्तन-मनन'** से **'भोग'** और **'मोक्ष'** दोनों की प्राप्ति होती है। यहाँ **'लक्ष्मी-नारायण-संहिता'** से **भगवती ललिता के १३५ नाम** दिए जा रहे हैं। आशा है कि पाठक-बन्धु **'प्रयाग'** में रहकर इन नामों के **'स्मरण-चिन्तन-मनन'** से लाभान्वित होंगे।—सं०]

।।श्री नारायणी श्रीरुवाच।।

ललिताख्य-महा-लक्ष्म्या, नामान्यसंख्यानि वै। तथाप्यष्टोत्तर-शतं, स-पादं श्रावय प्रभो!।।

।।श्री पुरुषोत्तमोवाच।।

मुख्य-नाम्नां प्रपाटेन, फलं सर्वाभिधानकम्, भवेदेवेति मुख्यानि, तव वक्ष्यामि संशृणु।।

।।नाम-पाठ।।

ललिता श्री महा-लक्ष्मीर्लक्ष्मी रमा च पद्मिनी। कमला सम्पदीशा च, पद्मालयेन्दिरेश्वरी।।
परमेशी सती ब्राह्मी, नारायणी च वैष्णवी। परेश्वरी महेशानी, शक्तीशा पुरुषोत्तमी।।
बिम्बी माया महा-माया, मूल - प्रकृतिरच्युती। वासुदेवी हिरण्या च, हरिणी च हिरण्मयी।।
कार्ष्णी कामेश्वरी चापि, कामाक्षी भग-मालिनी। वह्नि-वासा सुन्दरी च, संविद्य विजया जया।।
मङ्गला मोहिनी तापी, वाराही सिद्धिरीशिता। भुक्तिः कौमारिकी बुद्धिश्चामृता दुःखहा प्रसूः।।
सुभाग्यानन्दिनी सम्पद्, विमला विन्द्रिकाभिधा। माता मूर्तिर्योगिनी च, चक्रिकार्चा रति-धृती।।
श्यामा मनोरमा प्रीतिः, ऋद्धिः छाया च पूर्णिमा। तुष्टिः प्रज्ञा पद्मावती, दुर्गा लीला च माणिकी।।
उद्यमा भारती विश्वा, विभूतिर्विनता शुभा। कीर्तिः क्रिया च कल्याणी, विद्या कला च कुंकुमा।।
पुण्या पुराणा वागीशी, वरदा विभवात्मिनी। सरस्वती शिवा नादा, प्रतिष्ठा संस्कृता त्रयी।।
आयुर्जीवा स्वर्ण-रेखा, दक्षा बीरा च रागिनी। चपला पण्डिता काली, भद्राम्बिका च मानिनी।।
विशालाक्षी वल्लभा च, गोपी नारी नारायणी। सन्तुष्टा च सुषुम्ना च, क्षमा धात्री च वारुणी।।
गुर्वी साध्वी च गायत्री, दक्षिणा चान्नपूर्णिका। राज-लक्ष्मीः सिद्ध-माता, माधवी भार्गवी परी।
हारिती राशियानी च, प्राचीनी गौरिका श्रुतिः।।

।।फल-श्रुति।।

इत्यष्टोत्तर - शतकं, सप्त - विंशतिरित्यपि। ललिता-मुख्य-नामानि, कथितानि तव प्रिये!
नित्यं यः पठते तस्य, भुक्तिर्मुक्तिः कर-स्थिता। स्मृद्धिर्वंशस्य विस्तारः, सर्वानन्दा भवन्ति वै।।

हे प्रिये! ललिता के मुख्य एक सौ आठ और सत्ताइस अर्थात् एक सौ पैंतीस नाम तुमसे कहे हैं। जो नित्य इन नामों को पढ़ता है, उसके कुल की सम्पन्नता बढ़ती है, सभी प्रकार के सुख मिलते हैं और भोग-मोक्ष उसके हाथ में रहते हैं अर्थात् साधक सभी भोगों को भोगकर अन्त में मोक्ष पाता है। **—श्रीभैरवानन्दनाथ, सागर (म०प्र०)**

'तीर्थ-राज' प्रयाग में :

'गङ्गा-यमुना' एवं 'प्रयाग' की स्तुति

दृष्टेन वन्दितेनापि, स्पृष्टेन च धृतेन च। नरा येन विमुच्यन्ते, तदेतद् यामुनं जलम्।।१

तावद् भ्रमन्ति भुवने मनुजा भवोत्थ - दारिद्र्य - रोग - मरण - व्यसनाभिभूताः।

यावज्जलं तव महा - नदि! नील - नीलं, पश्यन्ति नो दधति मूर्धसु सूर्य - पुत्रि!।।२

श्रीयमुना-स्तुति— जिसके दर्शन, वन्दन, स्पर्श तथा धारण करने से मनुष्य **भव-बन्धन से मुक्त** हो जाते हैं, वही यह **यमुना जी का जल** है।

हे सूर्य-पुत्री महा-नदी यमुना जी! मनुष्य इस जगत् में प्राप्त होनेवाले **दरिद्रता, रोग** और मृत्यु आदि दुःखों से पीड़ित होकर तभी तक संसार में भटकते रहते हैं, जब तक वे **नील-मणि के सदृश आपके नीले जल का दर्शन** नहीं करते अथवा उसे अपने मस्तक पर नहीं चढ़ाते।

यत् - संस्मृतिः सपदि कृन्तति दुष्कृतौघं, पापावलीं जयति योजन-लक्षतोऽपि।
यन्नाम नाम जगदुच्चरितं पुनाति, दिष्ट्या हि सा पथि दृशोर्भविताऽद्य गङ्गा।।३
आलोकोत्कण्ठितेन प्रमुदित-मनसा वर्त्म यस्याः प्रयातं,
सद् यस्मिन् कृत्यमेतामथ प्रथम-कृती जज्ञिवान् स्वर्ग-सिन्धुम्।
स्नानं सन्ध्या निवापः सुर-यजनमपि श्राद्ध-विप्राशनाद्यं,
सर्वं सम्पूर्णमेतद् भवति भगवतः प्रीतिदं नात्र चित्रम्।।४
द्रवी-भूतं परं ब्रह्म, परमानन्द-दायिनि। अर्घ्यं गृहाण मे गङ्गे! पापं हर नमोऽस्तु ते।।५
साक्षाद् - धर्म-द्रवौघं मुर-रिपु-चरणाम्भोज-पीयूष-सारं,
दुःखस्याब्धेस्तरित्रं सुर - दनुज - नुतं स्वर्ग-सोपान-मार्गम्।
सर्वाहोहारि वारि प्रवर-गुण-गणं भासि या संवहन्ती,
तस्यै भागीरथि श्रीमति मुदित - मना देवि! कुर्वे नमस्ते।।६
स्वः-सिन्धो दुरिताब्धि-मग्न-जनता-सन्तारणि, प्रोल्लसत्—
कल्लोलामल - कान्ति - नाशित - तम-स्तोमे जगत्-पावनि!
गङ्गे देवि! पुनीहि दुष्कृत-भय-क्रान्तं कृपा-भाजनं,
मातर्मां शरणागतं शरणदे! रक्षाद्य भो! भीषितम्।।७
हं हो मानस! कम्पसे किमु सखे! त्रस्तो भयान्नारकात्,
किं ते भीतिरिति श्रुतिर्दुरित - कृत् सञ्जायते नारकी।
मा भैषीः शृणु मे गतिं यदि मया पापाचल-स्पर्धिनी,
प्राप्ता ते निरयः कथं किमपरं किं मे न धर्मो धनम्।।८

श्रीगङ्गा-स्तुति— जिनकी स्मृति **पाप-राशि का तत्काल नाश** कर देती है, जो लाख योजन दूर से भी पापों के समूह को परास्त करती हैं, जिनका नाम उच्चारण किए जाने पर सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर देता है, वे **गङ्गा जी** आज सौभाग्य-वश मेरे दृष्टि-पथ में आएँगी।

मनुष्य दर्शन के लिए उत्कण्ठित तथा प्रसन्न-चित्त होकर जिनके पथ का अनुसरण करता है, जिनके तट पर समस्त शास्त्र-विहित कर्म उत्तमता-पूर्वक सम्पन्न होते हैं, उन **गङ्गा जी** को आदि-सृष्टि के रचयिता **ब्रह्मा जी** ने पहले **स्वर्ग-गङ्गा** के रूप में उत्पन्न किया था। उनके तट पर किया हुआ **स्नान, सन्ध्या, तर्पण, देव-पूजा, श्राद्ध** और **ब्राह्मण-भोजन** आदि सब कुछ परिपूर्ण एवं **भगवान् को प्रसन्नता प्रदान करनेवाला** होता है—इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

परमानन्द प्रदान करनेवाली **हे गङ्गा जी!** आप जल-रूप में अवतीर्ण साक्षात् पर-ब्रह्म हैं। आपको नमस्कार है। आप मेरा दिया हुआ **'अर्घ्य'** ग्रहण कीजिए और मेरे पाप हर लीजिए।

हे श्रीमति **भागीरथी देवी!** जो जल-रूप में परिणत साक्षात् धर्म की राशि है, भगवान् विष्णु के चरणारविन्दों से प्रकट हुई सुधा का सार है, दुःख-रूपी समुद्र से पार होने के लिए जहाज है तथा स्वर्ग-लोक में जाने के लिए सीढ़ी है, जिसे देवता और दानव भी प्रणाम करते हैं, जो समस्त पापों का संहार करनेवाला, उत्तम गुण-समूह से युक्त और शोभा-सम्पन्न है, ऐसे जल को आप धारण करती हैं। मैं प्रसन्न-चित्त होकर आपको नमस्कार करता हूँ।

हे स्वर्ग-लोक की नदी भगवती गङ्गे! आप पाप के समुद्र में डूबी हुई जनता को तारने-वाली हैं, अपनी उठती हुई शोभा-युक्त लहरों की निर्मल कान्ति से पाप-रूपी अन्धकार-राशि का नाश करती हैं तथा जगत् को पवित्र करनेवाली हैं। मैं पाप के भय से ग्रस्त और आपका कृपा-भाजन हूँ। हे शरण-दायिनी माता! आपकी शरण में आज आया हूँ; मुझ भयभीत की रक्षा कीजिए।

ऐ मेरे चित्त! ओ मित्र! तुम नरक के भय से त्रस्त होकर काँप क्यों रहे हो? क्या तुम्हें यह सोचकर भय हो रहा है कि पापी मनुष्य नरक में पड़ता है—ऐसा श्रुति का कथन है? हे सखे! इसके लिए भय न करो; मेरी क्या गति होगी—यह बताता हूँ, सुनो; यदि मुझे पापों के पहाड़ से भी टक्कर लेनेवाली **भगवती गङ्गा** प्राप्त हो गई हैं, तो तुम्हें नरक की प्राप्ति कैसे हो सकती है? अथवा दूसरी कोई दुर्गति भी क्यों होगी? क्या मेरे पास धर्म-रूपी धन नहीं है?

बुद्धे! सद्-बुद्धिरेवं भवतु तव सखे मानस! स्वस्ति तेऽस्तु,
आस्तां पादौ! पदस्थौ सततमिह युवां साधु-दृष्टी च तुष्टी!
वाणि! प्राण-प्रियेऽधि-प्रकट-गुण-वपुः प्राप्नुहि प्राण-पुष्टिं,
यस्मात् सर्वैर्भवद्भिः सुखमतुलमहं प्राप्नुयां तीर्थ-पुण्यम्॥६

श्रीजाह्नवी-रवि-सुता-परमेष्ठि-पुत्री-सिन्धु-त्रयाभरण तीर्थ-वर प्रयाग!

सर्वेश! मामनुगृहाण नयस्व चोर्ध्व मन्तस्तमो दश-विधं दलय स्व-धाम्ना॥१०

वागीश - विष्ण्वीश - पुरन्दराद्याः, पाप-प्रणाशाय विदां विदोऽपि।

भजन्ति यत् - तीरमनील - नीलं, स तीर्थ-राजो जयति प्रयागः॥११

कलिन्दजा - सङ्गमवाप्य यत्र, प्रत्यागता स्वर्ग - धुनी धुनोति।

अध्यात्म - ताप - त्रितयं जनस्य, स तीर्थ-राजो जयति प्रयागः॥१२

श्यामो वटोऽश्याम-गुणं वृणोति, स्वच्छायया श्यामलया जनानाम्।

श्यामः श्रमं कृन्तति यत्र दृष्टः, स तीर्थ-राजो जयति प्रयागः॥१३

यत् - सेवया देव - नृ - देवतादि - देवर्षयः प्रत्यहमामनन्ति।

स्वर्गं च सर्वोत्तम - भूमि-राज्यं, स तीर्थ-राजो जयति प्रयागः॥१४

एनांसि हन्तीति प्रसिद्ध - वार्ता, नाम - प्रतापेन दिशो द्रवन्ती।

यस्य त्रिलोकी प्रतता यशोभिः, स तीर्थ-राजो जयति प्रयागः॥१५

धत्तोऽभितश्चामर - चारु - कान्ती, सितासिते यत्र सरिद्-वरेण्ये।

आद्यो वटश्छत्रमिवाति - भाति, स तीर्थ-राजो जयति प्रयागः॥१६

ब्राह्मीन - पुत्री - त्रिपथास्त्रिवेणी - समागमेनाक्षत - याग-मात्रान्।

यत्राप्लुतान् ब्रह्म - पदं नयन्ति, स तीर्थ-राजो जयति प्रयागः॥१७

केषाञ्चिज्जन्म - कोटिर्व्रजति सु - वचसा यामि यामीति यस्मिन्,

केषाञ्चित् - प्रोषितानां नियतमति - पतेद् वर्ष - वृन्दं वरिष्ठम्।

यः प्राप्तो भाग्य - लक्षैर्भवति भवति नो वा स वाचामवाच्यो,

दिष्ट्या वेणी - विशिष्टो भवति दृग-तिथिः किं प्रयागः प्रयागः॥१८

अन्यत्रापि प्रगर्जन्महिमनि तपसि प्रेमिभिर्विप्रकृष्टै—

र्ध्यातः सङ्कीर्तितो योऽभिमत - पद - विधातानिशं निर्व्यपेक्षम्।

श्रीमत् - पांशुं त्रिवेणी - परिवृढमतुलं तीर्थ - राजं प्रयागं,

गोऽलङ्कार - प्रकाशं स्वयममर - वरैश्चार्चितं तं नमामि॥१९

श्रीतीर्थ-राज प्रयाग-स्तुति— हे बुद्धे! सदा इसी प्रकार तुम्हारी सद्-बुद्धि बनी रहे। हे सखे मन! तुम्हारा भी कल्याण हो। हे चरणों! तुम भी इसी प्रकार योग्य पद (स्थान) पर स्थित रहो। हे नेत्रों! तुम दोनों भी उत्तम दृष्टि से सम्पन्न रहो। हे वाणी! तुम प्राणों की प्रिया हो तथा प्रकट हुए उत्तम गुणों से युक्त हे शरीर! तुम्हारी प्राण-शक्ति का पोषण हो; क्योंकि मैं तुम सब लोगों के साथ आज अतुलित सुख प्रदान करनेवाले **तीर्थ-जनित** पुण्य को प्राप्त करूँगा।

गङ्गा, यमुना और सरस्वती— इन तीनों नदियों को आभूषण-रूप में धारण करनेवाले **हे तीर्थ-राज प्रयाग!** हे सर्वेश्वर! मुझ पर अनुग्रह करो, मुझे ऊँचे उठाओ तथा मेरे अन्तः-करण के दस प्रकार के अविद्यान्धकार को अपने तेज से नष्ट करो।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्र आदि देवता और विद्वानों में श्रेष्ठ विद्वान् (ऋषि-महर्षि) भी जिसके श्वेत-कृष्ण-जल से शोभित तट का सेवन करते हैं, उस **तीर्थ-राज प्रयाग** की जय हो।

जहाँ आई हुई **गङ्गा** कलिन्द-नन्दिनी **यमुना** का सङ्गम पाकर मनुष्यों के आध्यात्मिक, आधि-दैविक तथा आधि-भौतिक—इन तीनों तापों का नाश करती हैं, उस **तीर्थ-राज प्रयाग** की जय हो।

जहाँ **श्याम-वट** उज्ज्वल गुण धारण करता है तथा दर्शन करने पर अपनी श्यामल छाया से मनुष्यों के जन्म-मरण-रूप श्रम का नाश कर डालता है, उस **तीर्थ-राज प्रयाग** की जय हो।

देवता, मनुष्य, ब्राह्मण तथा देवर्षि भी प्रति-दिन जिसके सेवन से स्वर्ग एवं सर्वोत्तम भू-मण्डल का राज्य प्राप्त करतें हैं, उस **तीर्थराज प्रयाग** की जय हो।

प्रयाग अपने नामके प्रताप से समस्त पापों का नाश कर डालता है, यह प्रसिद्ध वार्ता सम्पूर्ण दिशाओं में फैली हुई है। जिसके सुयश से सारी त्रिलोकी आच्छादित है, उस **तीर्थ-राज प्रयाग** की जय हो।

जहाँ दोनों किनारे श्याम और श्वेत सलिल से सुशोभित दो श्रेष्ठ सरिताएँ यमुना और गङ्गा चँवर की मनोहर कान्ति धारण कर रही हैं और आदि-वट (अक्षय-वट) छत्र के समान सुशोभित होता है, उस **तीर्थ-राज प्रयाग** की जय हो।

सरस्वती, यमुना और गङ्गा—ये तीन नदियाँ जहाँ डुबकी लगानेवाले मनुष्यों को, जो त्रिवेणी-सङ्गम के सम्पर्क से अक्षत याग-फल को प्राप्त हो चुके हैं, ब्रह्म-लोक में पहुँचा देती हैं, उस **तीर्थ-राज प्रयाग** की जय हो।

'मैं **प्रयाग** में जाऊँगा, जाऊँगा'— इन सुन्दर बातों में ही कितने ही लोगों के करोड़ों जन्म बीत जाते हैं (और **प्रयाग** की यात्रा सुलभ नहीं होती)। कुछ लोग घर से चल तो देते हैं, पर मार्ग में ही फँस जाने के कारण उनके अनेकों वर्ष समाप्त हो जाते हैं। लाखों बार भाग्य की सहायता होने पर भी जो कभी प्राप्त होता है और कभी नहीं भी होता, वह त्रिवेणी-सङ्गम-विशिष्ट उत्तम यज्ञ-भूमि **प्रयाग** वाणी से परे है। क्या मेरा ऐसा भाग्य है कि वह मेरे नेत्रों का अतिथि हो सके?

जो 'माघ'-मास में अपनी महिमा के विषय में अन्यत्र भी गर्जना करता है, प्रेमी-जनों के दूर से भी अपना ध्यान और कीर्तन करने पर जो बिना किसी की सहायता के निरन्तर अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है, जिसकी धूलि-राशि शोभा से सम्पन्न है, जो 'त्रिवेणी' का स्वामी है, जिसकी संसार में कहीं भी तुलना नहीं है तथा जिसका दिव्य-स्वरूप अंशु-माली सूर्य के समान प्रकाशमान है, उस श्रेष्ठ देवताओं द्वारा पूजित **तीर्थ-राज प्रयाग** को मैं प्रणाम करता हूँ।

* * *

मकर-संक्रान्ति (१४-१५ जनवरी, २००१) के पुनीत अवसर पर :

'तीर्थ-राज' प्रयाग में सूर्यार्घ्य-दान

प्रति-दिन नित्य-कर्म के बाद आचमन कर **'सङ्कल्प'** करें। अपने या अपने पुत्रादि प्रिय जनों के ज्वर आदि रोगों का समूल नाश हो और पूर्ण आरोग्य का लाभ हो—इस भाव का **'सङ्कल्प'** करें। **श्रीसूर्य-नारायण की प्रसन्नता** के लिए **'हंस'** आदि सत्तर (७०) नामों के द्वारा **श्री सूर्य भगवान् को अर्घ्य-दान** करें। इसके लिए किसी **'ताम्र-पात्र'** में जल भरें। उसमें **कनैल के फूल, रक्त-चन्दन-मिश्रित दूर्वांकुर** और **अक्षत** डालें। फिर **अर्घ्य-पात्र** को सिर तक उठाकर **'सूर्य का ध्यान'** करते हुए **सूर्य की ओर मुख करके उदय एवं अस्त होते हुए सूर्य को** निम्न ७० **मन्त्रों** द्वारा **प्रणाम** कर, प्रत्येक नाम से **एक बड़े पात्र** या कुम्भ में **अर्घ्य** देना चाहिए। यथा—

१ ॐ हंसाय नमः, २ ॐ भानवे नमः, ३ ॐ सहस्रांशवे नमः, ४ ॐ तपनाय नमः, ५ ॐ तापनाय नमः, ६ ॐ रवये नमः, ७ ॐ विकर्तनाय नमः, ८ ॐ विवस्वते नमः, ९ ॐ विश्व-कर्मणे नमः, १० ॐ विभावसवे नमः, ११ ॐ विश्व-रूपाय नमः, १२ ॐ विश्व-कर्त्रे नमः, १३ ॐ मार्तण्डाय नमः, १४ ॐ मिहिराय नमः, १५ ॐ अंशुमते नमः, १६ ॐ आदित्याय नमः, १७ ॐ उष्णगवे नमः, १८ ॐ सूर्याय नमः, १९ ॐ अर्घ्य-मणे नमः, २० ॐ ब्रघ्नाय नमः, २१ ॐ दिवाकराय नमः, २२ ॐ द्वादशात्मने नमः, २३ ॐ सप्त-हयाय नमः, २४ ॐ भास्कराय नमः, २५ ॐ अहस्कराय नमः, २६ ॐ खगाय नमः, २७ ॐ सुराय नमः, २८ ॐ प्रभाकराय नमः, २९ ॐ श्रीमते नमः, ३० ॐ लोक-चक्षुषे नमः, ३१ ॐ ग्रहेश्वराय नमः, ३२ ॐ लोकेशाय नमः, ३३ ॐ लोक-साक्षिणे नमः, ३४ ॐ तमोऽरये नमः, ३५ ॐ शाश्वताय नमः, ३६ ॐ शुचये नमः, ३७ ॐ गभस्ति-हस्ताय नमः, ३८ ॐ तीव्रांशवे नमः, ३९ ॐ तरणये नमः, ४० ॐ सुमहोऽरुणये नमः, ४१ ॐ द्यु-मणये नमः, ४२ ॐ हरिदश्वाय नमः, ४३ ॐ अर्काय नमः, ४४ ॐ भानुमते नमः, ४५ ॐ भय-नाशनाय नमः, ४६ ॐ छन्दोऽश्वाय नमः, ४७ ॐ वेद-वेद्याय नमः, ४८ ॐ भास्वते नमः, ४९ ॐ पूष्णे नमः, ५० ॐ वृषा-कपये नमः, ५१ ॐ एक-चक्र-रथाय नमः, ५२ ॐ मित्राय नमः, ५३ ॐ मन्दे-हारये नमः, ५४ ॐ तमिस्र-हन्त्रे नमः, ५५ ॐ दैत्य-हन्त्रे नमः, ५६ ॐ पाप-हर्त्रे नमः, ५७ ॐ धर्माय नमः, ५८ ॐ प्रकाशकाय नमः, ५९ ॐ हेलिकाय नमः, ६० ॐ चित्र-भानवे नमः, ६१ ॐ कलिघ्नाय नमः, ६२ ॐ तार्क्ष्य-वाहनाय नमः, ६३ ॐ दिक्-पतये नमः, ६४ ॐ पद्मिनी-नाथाय नमः, ६५ ॐ कुशेशय-कराय नमः, ६६ ॐ हरये नमः, ६७ ॐ धर्म-रश्मये नमः, ६८ ॐ दुर्निरीक्ष्याय नमः, ६९ ॐ चण्डांशवे नमः, ७० ॐ कश्यपात्मजाय नमः।

प्रत्येक मन्त्रोच्चारण में **सूर्य भगवान्** की ओर देखें। इस प्रकार करने से शोक एव दरिद्रता का निवारण होता है। जन्म-जन्मान्तर में किए हुए घोर पापों से छुटकारा मिलता है और सभी प्रकार के रोग नष्ट होकर **पूर्ण आरोग्य का लाभ** मिलता है।

* * *

श्रीवेणी-माधव-नाम-साधना

१ ॐ माधवाय नमः। २ ॐ केशवाय नमः। ३ ॐ अनन्ताय नमः। ४ ॐ गोविन्दाय नमः। ५ ॐ गरुड-ध्वजाय नमः। ६ ॐ माधव्यै नमः। ७ ॐ शिवदायै नमः। ८ ॐ गङ्गायै नमः। ९ ॐ शिवायै नमः। १० ॐ ब्रह्म-स्वरूपिण्यै नमः। ११ ॐ वैष्णव्यै नमः। १२ ॐ नारायणाय नमः। १३ ॐ कृष्णाय नमः। १४ ॐ श्रीधराय नमः। १५ ॐ मधु-सूदनाय नमः। १६ ॐ वैष्णव्यै नमः। १७ ॐ शाङ्गर्यै नमः। १८ ॐ ब्राह्म्यै नमः। १९ ॐ सर्व-देव-स्वरूपिण्यै नमः। २० ॐ त्रि-विक्रमाय नमः। २१ ॐ वामनाय नमः। २२ ॐ हृषीकेशाय नमः। २३ ॐ अधोक्षजाय नमः। २४ ॐ सर्व-देव-व्याधि-भिषक्-श्रेष्ठायै नमः। २५ ॐ संसार-विष-नाशिन्यै नमः। २६ ॐ प्रद्युम्नाय नमः। २७ ॐ अनिरुद्धाय नमः। २८ ॐ वासुदेवाय नमः। २९ ॐ पुरुषोत्तमाय नमः। ३० ॐ शुद्ध-मूर्त्यै नमः। ३१ ॐ भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिन्यै नमः। ३२ ॐ दामोदराय नमः। ३३ ॐ पद्म-नाभाय नमः। ३४ ॐ विश्वनाथाय नमः। ३५ ॐ जनार्दनाय नमः। ३६ ॐ ताप-त्रितय-संहर्त्र्यै नमः। ३७ ॐ भद्रायै नमः। ३८ ॐ शान्ति-कर्यै नमः। ३९ ॐ जयायै नमः। ४० ॐ नरसिंहाय नमः। ४१ ॐ अच्युताय नमः। ४२ ॐ अनन्ताय नमः। ४३ ॐ हरये नमः। ४४ ॐ चक्रिणे नमः। ४५ ॐ शार्ङ्गिणे नमः। ४६ ॐ सत्य-मूर्त्यै नमः। ४७ ॐ जगन्मात्रे नमः। ४८ ॐ शान्त्यै नमः। ४९ ॐ सन्तति-कारिण्यै नमः। ५० ॐ वैकुण्ठाय नमः।

५१ ॐ यज्ञ-पुरुषाय नमः। ५२ ॐ योगीशाय नमः। ५३ ॐ विष्टर-स्रवसे नमः। ५४ ॐ वैकुण्ठ-चरणोद्भूतायै नमः। ५५ ॐ योगिन्यै नमः। ५६ ॐ योगदायै नमः। ५७ ॐ अनघायै नमः। ५८ ॐ कालात्मने नमः। ५९ ॐ पुण्डरीकाक्षाय नमः। ६० ॐ विश्व-रूपिणे नमः। ६१ ॐ प्रतापवते नमः। ६२ ॐ काल-शक्त्यै नमः। ६३ ॐ परा-शक्त्यै नमः। ६४ ॐ सृष्टि-स्थित्यन्त-कारिण्यै नमः। ६५ ॐ अन्तर्यामिने नमः। ६६ ॐ समस्तेशाय नमः। ६७ ॐ सत्य-सन्धाय नमः। ६८ ॐ सनातनाय नमः। ६९ ॐ भद्रायै नमः। ७० ॐ भोगदायै नमः। ७१ ॐ भोगायै नमः। ७२ ॐ नन्दायै नमः। ७३ ॐ मन्दाकिन्यै नमः। ७४ ॐ नद्यै नमः। ७५ ॐ ईश्वराय नमः। ७६ ॐ परमात्मने नमः। ७७ ॐ मुरारये नमः। ७८ ॐ दैत्य-नाश-कृते नमः। ७९ ॐ त्रि-मार्गगायै नमः। ८० ॐ त्रि-वर्णायै नमः। ८१ ॐ त्रि-हुताशन-संस्थितायै नमः। ८२ ॐ मुकुन्दाय नमः। ८३ ॐ पीत-वाससाय नमः। ८४ ॐ विश्वक्-सेनाय नमः। ८५ ॐ चतुर्भुजाय नमः। ८६ ॐ स्वर्णदायै नमः। ८७ ॐ जगती-भूषायै नमः। ८८ ॐ शुक्ल-संस्थायै नमः। ८९ ॐ क्षमा-वत्यै नमः। ९० ॐ श्री-पतये नमः। ९१ ॐ वन-मालिने नमः। ९२ ॐ बलि-ध्वंसिने नमः। ९३ ॐ वटेशाय नमः। ९४ ॐ तेजोवत्यै नमः। ९५ ॐ विश्व-मित्रायै नमः। ९६ ॐ पाश-जाल-निकृन्तिन्यै नमः। ९७ ॐ सर्वार्थ-साधकाय नमः। ९८ ॐ पूज्याय नमः। ९९ ॐ भक्त-सङ्कष्ट-नाशनाय नमः। १०० ॐ सु-व्रतायै नमः।

१०१ ॐ सु-जलायै नमः। १०२ ॐ तारायै नमः। १०३ ॐ पारावार-विहारिण्यै नमः। १०४ ॐ देवकी-नन्दनाय नमः। १०५ ॐ विश्वम्भराय नमः। १०६ ॐ श्रीवत्स-लाञ्छनायै नमः। १०७ ॐ देव-पूजायै नमः। १०८ ॐ जगद्धात्र्यै नमः। १०९ ॐ वरिष्ठायै नमः। ११० ॐ वरदायै नमः। १११ ॐ अनघायै नमः। ११२ ॐ महा-मत्स्याय नमः। ११३ ॐ महा-कूर्माय नमः। ११४ ॐ शेष-शायिने नमः। ११५ ॐ गदा-धराय नमः। ११६ ॐ भागीरथ्यै नमः। ११७ ॐ जाह्नव्यै नमः। ११८ ॐ

महा-पातक-नाशिन्यै नमः। ११६ ॐ महा-यज्ञ-वराहाय नमः। १२० ॐ राघवाय नमः। १२१ ॐ रावणान्त-कृते नमः। १२२ ॐ ब्रह्म-निष्ठायै नमः। १२३ ॐ ब्रह्मदायै नमः। १२४ ॐ उतवायै नमः। १२५ ॐ सुख-दोग्ध्यै नमः। १२६ ॐ मङ्गलाय नमः। १२७ ॐ काश्यपाय नमः। १२८ ॐ भाव-गम्याय नमः। १२६ ॐ भक्त-वत्सलाय नमः। १३० ॐ सञ्जीविन्यै नमः। १३१ ॐ भाव-गम्यायै नमः। १३२ ॐ शरण्यायै नमः। १३३ ॐ भक्त-वत्सलायै नमः। १३४ ॐ त्रिगुणादये नमः। १३५ ॐ त्रय-मूर्त्तये नमः। १३६ ॐ हनुमत्-प्रमुख-प्रियाय नमः। १३७ ॐ निर्लेपाय नमः। १३८ ॐ दुःख-हन्त्र्यै नमः। १३६ ॐ प्रणतार्त्ति-प्रभञ्जिन्यै नमः। १४० ॐ अनादि-निधनायै नमः। १४१ ॐ साक्षिणे नमः। १४२ ॐ लोकाध्यक्षायै नमः। १४३ ॐ पितामहाय नमः। १४४ ॐ अनादि-मध्य-निधनाय नमः। १४५ ॐ अनिरूपाय नमः। १४६ ॐ अनेकिन्यै नमः। १४७ ॐ जगन्नाथाय नमः। १४८ ॐ ब्रह्मण्याय नमः। १४६ ॐ सर्व-जिते नमः। १५० ॐ प्रभवे नमः।

१५१ ॐ जगद्-वरायै नमः। १५२ ॐ जगद्-वन्द्यायै नमः। १५३ ॐ क्रीडा-कल्लोल-कारिण्यै नमः। १५४ ॐ सहस्र-शीर्षे नमः। १५५ ॐ पुरुषाय नमः। १५६ ॐ प्रधान-पुरुषाय नमः। १५७ ॐ पराय नमः। १५८ ॐ ब्रह्म-विद्यायै नमः। १५६ ॐ त्रयी-रूपाय नमः। १६० ॐ मूल-प्रकृत्यै नमः। १६१ ॐ ईश्वर्यै नमः। १६२ ॐ प्रयाग-निलय-स्वामिने नमः। १६३ ॐ श्री-जिनवासाय नमः। १६४ ॐ शुभेक्षणाय नमः। १६५ ॐ पद्मेक्षणाय नमः। १६६ ॐ पद्म-वर्णाय नमः। १६७ ॐ स्वर्ग-सोपान-पद्धत्यै नमः। १६८ ॐ हिरण्य-गर्भाय नमः। १६६ ॐ क्षेत्रज्ञाय नमः। १७० ॐ शाश्वताय नमः। १७१ ॐ दुर्द्धराय नमः। १७२ ॐ जयाय नमः। १७३ ॐ दिव्याम्बरायै नमः। १७४ ॐ दिव्य-भोगायै नमः। १७५ ॐ दिव्यायै नमः। १७६ ॐ दिव्य-भूषणायै नमः। १७७ ॐ सु-भुजायै नमः। १७८ ॐ सु-मुखायै नमः। १७६ ॐ श्रीमते नमः। १८० ॐ सु-नेत्राय नमः। १८१ ॐ शोभनाकृतये नमः। १८२ ॐ कालिन्दि-सङ्गतायै नमः। १८३ ॐ कल्पायै नमः। १८४ ॐ कलि-काल-विनाशिन्यै नमः। १८५ ॐ वन्दितांघ्रि-युगायै नमः। १८६ ॐ अक्षय्य-वट-लीला-विचक्षणाय नमः। १८७ ॐ इन्द्रादि-पद-वन्दितायै नमः। १८८ ॐ सौर्यै नमः। १८६ ॐ पावन्यै नमः। १६० ॐ यज्ञ-पुष्करायै नमः। १६१ ॐ परा-मूर्त्तये नमः। १६२ ॐ भक्ति-मद्-रम्यायै नमः। १६३ ॐ वेदि-त्रय-विभूषणाय नमः। १६४ ॐ त्रि-मूर्त्यै नमः। १६५ ॐ अक्षरायै नमः। १६६ ॐ त्र्यक्षायै नमः। १६७ ॐ त्र्यक्ष-मौलि-कृतास्पदायै नमः। १६८ ॐ कमनीय-तराकारायै नमः। १६६ ॐ काम-जिते नमः। २०० ॐ कामदायै नमः।

२०१ ॐ काम-प्रदाय नमः। २०२ ॐ कमनीय-तराय नमः। २०३ ॐ काम्यायै नमः। २०४ ॐ शरण्यायै नमः। २०५ ॐ कमित-प्रदायै नमः। २०६ ॐ विधात्रि-करकोद्भूतायै नमः। २०७ ॐ संज्ञा-जठर-भूषणायै नमः। २०८ ॐ विरञ्चि-वदनोद्भूतायै नमः। २०६ ॐ विष्णु-पदावने-जन्यै नमः। २१० ॐ चरमाचल-संवृद्धायै नमः। २११ ॐ ब्रह्म-कार्य-कृतोद्यमायै नमः। २१२ ॐ आदि-वेण्यै नमः। २१३ ॐ मध्य-वेण्यै नमः। २१४ ॐ अन्त्य-वेण्यै नमः। २१५ ॐ त्रिवेण्यै नमः। २१६ ॐ श्रीवेणी-माधवाय नमः।

य एतैर्नामभिः पूजां, कुर्वति कुसुमादिभिः। त्रिवेणी-माधवौ तेषां, प्रसन्नौ नात्र संशयः।।

।।इति पुष्पादिभिः पूजा-विधिः सम्पूर्णम्। शुभमस्तु। श्रीकृष्णार्पितमस्तु। संवत् १६२० मार्गशीर्ष शुक्ल-द्वादश्यां लिखितं पुस्तकम्। श्रीसीता-रामाभ्यां नमः।।

'कुम्भ'-पर्व में उपयोगी पठनीय साहित्य

१	अलोप-शङ्करी देवी [ललिता पीठ]	४)
२	अध्यात्म चर्चा	५)
३	अध्यात्म-योग	५)
४	अक्षय-वट	५)
५	आनन्द-लहरी (श्रीशङ्कराचार्य विरचित)	१२)
६	क्या 'राम-चरित-मानस' तन्त्र है?	३०)
७	गङ्गा-यमुना-सरस्वती पूजा-अङ्क	४)
८	गङ्गा-सहस्र-नाम-साधना	५)
९	गायत्री-कल्पतरु	४५)
१०	तन्त्र-कल्पतरु	४०)
११	तन्त्र-विशेषाङ्क	३०)
१२	दुर्गा-सप्तशती (पद्यानुवाद)	१२)
१३	दुर्गा सप्तशती (विशुद्ध-संस्करण)	२०)
१४	दुर्गा सप्तशती (बीजात्मक)	६)
१५	दुर्गा-सहस्र-नाम-साधना	५)
१६	धन-प्राप्ति के प्रयोग	६)
१७	धर्म-चर्चा	१०)
१८	ध्यान-योग एवं विचार-योग	५)
१९	नवरात्र-कल्पतरु-अङ्क	३०)
२०	पूजा-रहस्य	४०)
२१	भगवती मानस-पूजा-स्तोत्र	१०)
२२	भागवत धर्म का प्राचीन इतिहास	१५)
२३	मन्त्र-कल्पतरु	२०)
२४	मन्त्र-सिद्धि का उपाय	६)
२५	मन्त्र-कोष	१२५)
२६	मुद्राएँ एवं उपचार (सचित्र)	१५)

२७	मुमुक्षु मार्ग, भाग १, भाग २	५५)
२८	महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल	१२)
२९	मन्त्र-योग	५)
३०	राज-योग	४)
३१	वन्दे मातरम्	५)
३२	शक्ति-पीठ काशी	१०)
३३	शाबर-मन्त्र-संग्रह [बारह भाग]	३३०)
३४	शाक्त धर्म क्या है?	१५)
३५	शिव-शक्ति-अङ्क	४०)
३६	श्रीललिता-त्रिशती	२०)
३७	श्रीचक्र-रहस्य	२०)
३८	श्रीविद्या-स्तोत्र पञ्चकम्	३५)
३९	श्रीविद्या-सपर्या-वासना	६५)
४०	श्रीत्रिपुरा महोपनिषद्	६)
४१	श्री श्रीविद्या-स्तव-मञ्जरी	३०)
४२	सप्तशती-सूक्त-रहस्य	३०)
४३	सप्तशती तत्त्व	३०)
४४	सार्थ सौन्दर्य लहरी	६५)
४५	सौन्दर्य-लहरी [पद्यानुवाद]	१०)
४६	सविधि श्रीललिता-सहस्र-नाम	१००)
४७	हठ-योग	४)
४८	हिन्दुओं की पोथी	२५)
४९	श्रीत्रिवेणी देवी स्तोत्र-अङ्क	१०)
५०	रासलीला-प्रकरण-अङ्क	१०)
५१	रां रामाय नमः-अङ्क	१०)
५२	श्रीशङ्कराचार्य-अङ्क	१२)

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान : चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग, प्रयाग-राज, ✆ : ५०२७८३

रजि० सं० ए० डी० ६१ रजि० सं० ३२९८१/५७

'कुम्भ'-पर्व विवेचन

* महा-पौष-पूर्णिमा *

(चन्द्र-ग्रहण)

* मकर-संक्रान्ति *

* मौनी अमावास्या *

* वसन्त-पञ्चमी *

* महा-माघ-पूर्णिमा *

* महा-शिव-रात्रि *

सहित

'तीर्थ-राज' प्रयाग-स्नान-विधि

* ॐ कुम्भाय नमः * ॐ कुम्भाय नमः * ॐ कुम्भाय नमः *

'कुम्भ'-पर्व विस्तृत चर्चा

सम्पादक/प्रकाशक/मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, चण्डी-धाम, प्रयागराज-६ ✆ : ५०२७८३